

जिज्ञासा

विज्ञान जर्नल

वर्ष 2024 अंक 38









ISSN 2349-560X

संरक्षक
प्रो. रंगन बनर्जी
निदेशक

संपादक
डॉ. नीरज चौरसिया

संपादन मण्डल
प्रो. सौरभ तिवारी
डॉ. हर्ष सत्या
डॉ. शिवानी चतुर्वेदी

अंक डिज़ाइन
सिद्धिका राजपूत
मयूर भंगाले
राणा शिंदे
(DeSH Lab, डिज़ाइन विभाग, भा. प्रौ. सं. दिल्ली)

जिज्ञासा

विज्ञान जर्नल
वर्ष 2024 अंक 38
ISSN 2349-560X

हिन्दी कक्ष
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
hindi.iitd.ac.in

जिज्ञासा+

विज्ञान जर्नल

वर्ष 2024 अंक 38

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
INDIAN INSTITUTE OF TECHNOLOGY DELHI
हौज़ खास, नई दिल्ली – 110016
Hauz Khas, New Delhi – 110 016
Tel. : +91-11- 26582020, 26591701 (O)
Tel. : +91-11- 26582022, 26591801 (R)
Fax : +91-11- 26582659 (O)
E-mail : director@iitd.ac.in
rangan@iitd.ac.in

रंगन बॅनर्जी
निदेशक एवं
प्रोफ़ेसर, ऊर्जा विज्ञान एवं अभियांत्रिकी विभाग
Rangan Banerjee
Director and
Professor, Department of Energy Science & Engineering



शुभकामना संदेश

'जिज्ञासा' हिन्दी विज्ञान पत्रिका (जर्नल) के 38वें अंक का अवलोकन करके एक सुखद अनुभूति का अहसास हुआ। हिन्दी कक्ष द्वारा 'जिज्ञासा' के अनवरत रूप से प्रकाशन के लिये हार्दिक शुभकामनाऐं। संस्थान द्वारा प्रकाशित यह पत्रिका वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करने का एक सराहनीय प्रयास है।

इस अंक में प्रस्तुत शोधपत्र न केवल शोध विद्यार्थियों या वैज्ञानिकों अपितु सभी पाठकों के लिये अत्यंत उपयोगी व रूचिकर रहेंगे, ऐसी आशा है। 'जिज्ञासा' के माध्यम से संस्थान के संकाय सदस्यों, विद्यार्थियों व देश के अन्य प्रमुख संस्थानों से वैज्ञानिकों द्वारा अपने अनुसंधान का हिन्दी में प्रस्तुतिकरण, राष्ट्र के विकास में एक प्रशंसनीय एवं उल्लेखनीय योगदान है।

हमारे संस्थान का दृष्टिकोण अकादमिक एवं अनुसंधान में उत्कृष्टता प्राप्त करना है तथा यह सुनिश्चित करना है कि हमारे द्वारा प्राप्त ज्ञान का समाज की समस्याओं के तकनीकि समाधान हेतु उपयोग हो। भारत में विज्ञान एवं इंजीनियरी का शीर्ष शिक्षण संस्थान होने के नाते भविष्य में भी इस क्षेत्र में संस्थान के विद्यार्थियों व संकाय सदस्यों से और अधिक भागीदारी एवं सहयोग की अपेक्षा है।

निःसंदेह 'जिज्ञासा' के इस अंक के लिए शोध पत्र हिन्दी में लिखने के लिये लेखकगण ने काफी परिश्रम किया होगा जो कि प्रशंसनीय है। इस पत्रिका की निरन्तरता बनाए रखने के लिए सम्पादन मण्डल सहित सभी को मेरी शुभकामनायें।

रंगन बॅनर्जी

प्रो. रंगन बनर्जी



संपादकीय

भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम ही नहीं अपितु समाज का दर्पण है, जीवन शैली व संस्कृति की वाहक है । हिंदी भारत के जन-मानस की भाषा है। हिंदी में वैज्ञानिक और तकनीकी लेखन की परंपरा दशकों पुरानी है। देश में विज्ञान और इंजीनियरी का शीर्ष शैक्षणिक संस्थान होने के नाते राजभाषा हिंदी की प्रगति को बल प्रदान करने की दिशा में हिन्दी कक्ष की ओर से 'जिज्ञासा विज्ञान पत्रिका (जर्नल) का 38वां अंक प्रस्तुत है। आई आई टी दिल्ली के हिन्दी कक्ष द्वारा प्रकाशित 'जिज्ञासा', विज्ञान व तकनीकी साहित्य हिंदी में तैयार करने की दिशा में एक छोटा सा सफल प्रयास है।

जिज्ञासा के इस अंक में कुल 11 शोध पत्र हैं जिन्हें दो खंडों में बांटा गया है - 'विज्ञान एवं तकनीकी' तथा 'टेक्नोलोजी, समाज एवं सस्टेनबिलिटी'। प्रथम खंड में कुछ प्रमुख शोध पत्र जैसे 'नवीनीकरण फीडस्टॉक के द्वारा जैविक स्नेहक का उत्पादन'; 'सामग्रियों को जोड़ने की एक नई तकनीक डिफ्यूजन वेल्डिंग'; 'गर्भाशय फाइब्रॉयड का सफल आयुर्वेदि क प्रबंधन'; और 'शोध प्रभाव और शोध की दृश्यता बढ़ाने के कुछ प्रभावी और बेहतर तरीके'; तथा द्वितीय खंड में 'टेक्नोलोजी की समझ एवं स्वरूप: गांधीजी की दृष्टि'; 'जीरो घाटी: गांधी के 'सपनों के भारत' की एक जीवंत कार्यशाला'; 'सस्टेनबिलिटी के संदर्भ में पारम्परिक ग्राम अर्थव्यवस्था पर सैद्धांतिक चर्चा ' आदि प्रस्तुत है। इस प्रकार प्रथम खंड प्रयोगात्मक कार्य तथा द्वितीय खंड मौलिक चिंतन का परिचायक हैं। ये शोध पत्र लेखकगण द्वारा सरल एवं आकर्षित रूप में प्रस्तुत किए गए हैं जिनमें संस्थान के संकाय सदस्यों, शोध विद्यार्थियों, के अतिरिक्त अन्य संस्थानों के लेखकों तथा स्वतंत्र अन्वेषकों का विशेष योगदान उल्लेखनीय है ।

'जिज्ञासा' के इस अंक का प्रकाशन निश्चित रूप से संतुष्टिदायक है। इसके लिए इस अंक के संपादन मंडल के सदस्यों का उनके सतत, महत्वपूर्ण व सराहनीय योगदान के लिए मैं हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। सभी लेखकगण ने अत्यंत मेहनत एवं सहयोगी भावना से कार्य करके इस शुभ कार्य को समय से सम्पन्न कराया, उन सभी को धन्यवाद करता हूँ। हिन्दी कक्ष के सदस्यों श्रीमती इन्द्रमणि और श्री पी.डी. कुकरेती का प्रकाशन कार्य में विशेष योगदान व श्रीमती सुनीता का विभिन्न रूपों में भरपूर सहयोग मिला, इन सभी के समर्पित भाव तथा अपार सहयोगी भावना से ही इस अंक का प्रकाशन संभव हो सका।

इस अंक के प्रकाशन में प्रो. संतोष सत्या (पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी कक्ष व प्रोफेसर (से.नि.), सी.आर.डी.टी. का विशेष योगदान और मार्गदर्शन रहा , मैं उनके प्रति हार्दिक आभार ज्ञापित करता हूँ । इस अंक की डिज़ाइन प्रो. सौरभ तिवारी व उनकी टीम (देश लैब, डिज़ाइन विभाग) का विशेष सहयोग रहा , जिसके कारण 'जिज्ञासा' के इस अंक को यूनिकोड फॉन्ट में तथा एक नई डिज़ाइन में प्रस्तुत किया जा सका ।

निःसदेह विज्ञान जर्नल का यह अंक अपने संस्थान के साथ -साथ अन्य संस्थानों के शोध विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करके हिन्दी में लेखन को उभारने के लिये सहायक रहेगा। 'जिज्ञासा' के माध्यम से यह प्रयास किया जा रहा है कि विज्ञान और तकनीकी जैसे विषयों पर कुछ साहित्य हिन्दी में तैयार हो सके। इस प्रस्तुति में कुछ भाषाई त्रुटियाँ हो सकती हैं परंतु लेखकों द्वारा किए गए प्रयास अत्यंत सराहनीय हैं। भविष्य में बौद्धिक वर्ग की ओर से हम और अधिक भागीदारी की आशा करते हैं। आपसे प्रार्थना है कि आप भी इस पत्रिका से जुड़ें और अपना शोध पत्र/आलेख हमें ई-मेल या डाक से भेजें। हमारी कामना है कि जिज्ञासा के अगले अंक में आपका भी शोध पत्र/आलेख सम्मिलित हो। 'जिज्ञासा' के संबंध में आपके सुझाव /प्रतिक्रिया संपादन मंडल के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं। आशा है निकट भविष्य में हमारा संस्थान इस दिशा में और अधिक रुचि लेकर कार्य करेगा और राजभाषा हिन्दी का गौरव बढाएगा।

डॉ. नीरज चौरसिया
अध्यक्ष, हिन्दी कक्ष

ISSN 2349-560X

जिज्ञासा
विज्ञान जर्नल
वर्ष 2024 अंक 38

भाग 1 : विज्ञान एवं तकनीकी

नवीनीकरण फीडस्ट्रॉक के द्वारा जैविक स्नेहक का उत्पादन 3
डॉ. शिवानी चतुर्वेदी, डॉ. नाजिया सईद, डॉ. प्रशांत कुमार,
प्रवीण कुमार शर्मा, डॉ. यलियास साबरी,
प्रो. सुनील कुमार खरे, डॉ. प्रशांत कुमार राउत

जीवनशैली गत रोगों की चिकित्सा में औषधीय पौधे चित्रक (Plumbago zeylenica) का महत्व – साहित्य समीक्षा 8
प्रो. भावना सिंह, डॉ. प्रीति शर्मा , डॉ. रोहित रस्तोगी , डॉ. नीति टंडन

गर्भाशय फाइब्रॉएड का सफल आयुर्वेदिक प्रबंधन - एक अध्ययन 15
डॉ. अनामिका चौधरी, प्रो. भावना सिंह, डॉ. रोहित रस्तोगी,
मोहित सिंह, डॉ. नीति टंडन

सामग्रियों को जोड़ने की एक नई तकनीक- डिफ्यूजन वेल्डिंग 20
संजय गोस्वामी

शोध प्रभाव और शोध की दृश्यता बढ़ाने के कुछ प्रभावी और बेहतर तरीके - एक अध्ययन 27
डॉ. नीरज चौरसिया

भाग 2 : टेक्नोलोजी, समाज एवं सस्टेनबिलिटी

टेक्नोलोजी की समझ एवं स्वरूप – गांधी जी की दृष्टि 41
प्रो. संतोष सत्या, डॉ. हर्ष सत्या

जीरो घाटी - गांधी के 'सपनों के भारत' की एक जीवंत कार्यशाला 46
प्रो. सौरभ तिवारी

'सस्टेनबिलिटी' के संदर्भ में पारम्परिक ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था पर सैद्धांतिक चर्चा (भारत में उत्पादन, विनिमय और अवशेष पुनःचक्रण की परम्परा) 53
डॉ. हर्ष सत्या, डॉ. गोपाल बाबू

विवेक सम्मत विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अवधारणा 62
प्रो. सन्तोष सत्या, प्रो. ऋषिराज गौड़

प्राकृतिक इंजीनियरी का उदय/प्रादुर्भाव 66
प्रो. सन्तोष सत्या

आधुनिक टैक्नोसेवी संस्कृति में लोक ज्ञान-विद्या का समावेश एवं परिरक्षण 69
डॉ. हर्ष सत्या, प्रो. नवज्योति सिंह

नदी गीत

नदिया धीरे बहो...
कौन सुनेगा तेरी आह, नदिया धीरे बहो...
किसको है तेरी परवाह, नदिया धीरे बहो...।
सभ्यताएं जनमी तट तेरे, संस्कृतियां परवान चढ़ी
तेरे आंचल के साये में सारी दुनिया पली बढ़ी
आज किसे एहसास... हो
नदिया धीरे बहो...

इठलाने-बलखाने वाली अब बेबस हो बहती हो
कंचन काया वाली मईया काली काली दिखती हो
बंध गये तेरी बांह... हो
नदिया धीरे बहो...

तेरे पूत, कपूत हो गये-भूल गये तेरा सम्मान
ढूंढ़न से भी कहां मिलेंगे, राजा भगीरथ, कान्हा, राम
किससे करोगी फरियाद... हो
नदिया धीरे बहो...

तेरा घुट-घुट ऐसे मरना रंग एक दिन लाएगा
पानी रहते हुए विश्व जब बेपानी हो जाएगा
देगा कौन पनाह.. हो
नदिया धीरे बहो...

- मुरारी शरण प्रसाद

भाग 1

विज्ञान एवं तकनीकी

नवीनीकरण फीडस्ट्रॉक के द्वारा जैविक स्नेहक का उत्पादन

सारांश

जीवाश्म ईंधन से प्राप्त स्नेहक वातावरण पर दुष्प्रभाव डालते हैं। अतः इनका इस्तेमाल नहीं करने में ही बुद्धिमता है। इस संदर्भ में ऐसा अनुमानित है कि वैश्विक स्तर पर स्नेहकों का बाजार वर्ष 2020 में $ 15.85 बिलियन से वर्ष 2027 में $ 20.27 बिलियन वृद्धि की अपेक्षा की जा रही है। साथ साथ वार्षिक वृद्धि 4.5% की दर से होने की संभावना आंकी जा रही है। (Alvarez et al., 2022)। जैविक स्नेहक नवीनीकरण स्रोत, किफायती, गैर विषैले व बायोडिग्रेडेबल गुणों से युक्त होते हैं। इस जैविक व कृत्रिम स्नेहकों के गुणों व भविष्य के संदर्भ में विस्तार का इस शोध पत्र में वर्णन किया गया है।

शब्द : जैविक स्नेहक, बायोडिग्रेडेबल, नवीनीकरण फीडस्ट्रॉक, कृत्रिम स्नेहक

डॉ. शिवानी चतुर्वेदी[1,2]
डॉ. नाजिया सईद[2]
डॉ. प्रशांत कुमार[3]
प्रवीण कुमार शर्मा[2]
डॉ. यलियास साबरी[3]
प्रो. सुनील कुमार खरे[4]
डॉ. प्रशांत कुमार राउत[2]

[1]भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
[2]केंद्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान, लखनऊ
[3]सेंटर फॉर एडवांस मैटेरियल्स एंड इंडस्ट्रियल केमिस्ट्री (CAMIC), स्कूल ऑफ साइंस, RMIT यूनिवर्सिटी, मेलबोर्न, ऑस्ट्रेलिया
[4]भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान, कोलकाता
Email: shivani.d123@gmail.com

1. प्रस्तावना

किन्हीं भी दो सतहों के मध्य घर्षण को स्नेहकों की सहायता से कम किया जा सकता है। यह अतिरिक्त दबाव को सहने के लिए क्षमता प्रदान करता है। स्नेहक सामान्य कार्यक्षमता को बढ़ाने में मदद करता है। साथ ही साथ मशीन के असफल होने को भी संभालता है। स्नेहक तरल, अर्द्धतरल व ठोस किसी भी रूप में पाया जा सकता है। स्नेहक ऊर्जा के नुकसान को सतहों पर कम करता है, ऑक्सीकरण को घटा कर उनको जंग लगने से सुरक्षित रखता है, धूल से, गंदगी व जल से सुरक्षा प्रदान करता है।

विश्व में जीवाश्म ईंधन से उत्पादित विभिन्न वस्तुओं से वातावरण में दुष्प्रभाव दिखाई दे रहे हैं। बायोमास व ठोस अपशिष्ट पदार्थ से ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है, उदाहरण के तौर पर तरल ऊर्जा (Rakesh and Dasappa, 2021) मेथेनॉल (Singh *et al.*, 2022), बायो ऑयल (Eschenbacher *et al.*, 2021) एवं प्लेटफार्म केमिकल्स (Mika *et al.*, 2018), प्राप्त किए जा सकते है।

इन सभी में से बायोल्युब्रिकेंट्स का योगदान बेहद अहम है। इन बायोल्युब्रिकेंट्स में पारंपरिक स्नेहकों के गुणों के अलावा इनमें कार्बन रूपी सबस्ट्रेट का अक्षय स्रोत भी पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इनमें जैव निम्नीकरणीय योग्यताएं भी पाई जाती है (Syahir *et al.*, 2017)। पादपीय वसा, पॉलिमरिक पॉलिसैकेराइड्स व वेक्स एक्सटरडम द्वारा समान्यत: जैव स्नेहक प्राप्त किये जा सकते हैं (Bart *et al.*, 2013)।



चित्र 1

2. सामग्री और पद्धति :

ट्रॉंसएक्टरीफिकेशन से एल्कीय समूह को स्थानांतरित किया जाता है। यह प्रक्रिया एस्टर तथा अल्कोहल के मध्य होने वाली क्रिया का नतीजा है। इनमें कार्बन श्रृंखला की लंबाई, उत्प्रेरक व अंतिम उत्पाद फैटी एसिड, एल्किल एस्टर के आधार पर ऊर्जा के विभिन्न स्वरूपों में आंकलित करके इनकी उपयोगिता जैसे बायोडीजल व स्नेहक इत्यादि में इस्तेमाल होते हैं (Panchal *et al.*, 2017)। स्नेहक की संरचना में मुख्य रूप से बेस ऑयल एडिटिव पाए जाते हैं। यह सामान्यत: 90:10 के अनुपात में होता है। पारंपरिक स्नेहकों में हाइड्रोजेनेटेड पॉलिऑलिफिन्स, एक्टर्स, सिलिकॉन व फ्लूरोकार्बन बेस ऑयल के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं, जबकि जैव स्नेहकों में वेजिटेबल ऑयल का प्रयोग किया जाता है। यहां वेजिटेबल या वनस्पति तेलों का प्रयोग ज्यादा प्रचलित होता जा रहा है, क्योंकि यह न सिर्फ वातावरण के लिए सुरक्षित है, बल्कि यह अक्षय स्रोत भी है (Joseph *et al.*, 2007)। वानस्पतिक तेल में मुख्य रूप से ट्राइग्लिसरॉल (98%), डाइग्लिसरॉल (0.5%), मुक्त फैटी एसिड, स्टीरॉल (0.3%) व टोकोफेरॉल (0.1%) पाए जाते हैं।

3. परिणाम व चर्चा :

वे सभी स्नेहक जो बहुत सरलता से जैव अपघटित हो सकते हों तथा वातावरण व मनुष्यों के लिए विषैले नहीं है, उन्हें जैव स्नेहकों की श्रेणी में शामिल किया जाता है। जैव स्नेहकों से घर्षण में कमी अन्य स्नेहकों की तुलना में ज्यादा होती है (Arumugam & Sriram *et al.*, 2012)। लगभग 66% ऊर्जा का क्षय थर्मल, घर्षणीय व ट्रांसमिशन की वजह से होता है। जैव स्नेहकों में क्षय कम करने की सफलता प्राप्त होती है। एक शोध में चतुर्थ चरणीय उत्प्रेरक प्रक्रिया द्वारा अपशिष्ट खाद्य तेल व साइक्लिक ऑक्सिजनेट द्वारा जैव स्नेहक को बनाया जा सका (Jahromi *et al.*, 2021)। श्यानता जैव स्नेहक का प्रमुख विशेषता मानी गई है। इसके अधिकता से स्नेहक का कार्य बेहतर पाया गया है। श्यानता का सही होना अति आवश्यक बिंदु है (Aisyah *et al.*, 2021)। शोध के दौरान जैव स्नेहकों की जरूरत के मद्देनजर बहुत से तथ्यों पर गौर की आवश्यकता महसूस हुई, जिनमें जैव स्नेहकों के स्रोत, बनावट, गुणवत्ता, जैव अपघटनशीलता व उपयोगिता पर ध्यान दिया जाना जरूरी दिखाई दिया। अखाद्य व अपशिष्ट पदार्थों द्वारा कृषि के व्यर्थ पदार्थों को शामिल किया गया। उनकी हरित गुणों की वजह से ये पारंपरिक स्नेहकों से बेहतर सिद्ध होता है। इनमें श्यानता, थर्मल ऑक्सीडेटिव स्थिरता, पोर पॉइंट, विषैलापन, हाइड्रोलाइरिक स्थिरता व सबसे महत्वपूर्ण जैव अपघटन क्षमता के बारे में विस्तार पूर्वक समझना जरूरी है।

सारणी-1: वनस्पति तेल में पाए जाने वाले फैटी एसिड

फैटी एसिड का प्रकार	फैटी एसिड का नाम व सूत्र
संतृप्त (सैचुरेटेड)	पामीटिक ($C_{16}H_{32}O_2$), स्टेरिक (C18H36)
मोनो सेचुरेटेड	ओलिक ($C_{18}H3_4O_2$)
डाई अनसेचुरेटेड	लिनोलेइक ($C_{18}H_{34}O_2$)
ट्राई अनसेचुरेटेड	लिनोलेनिक ($C_{18}H_{34}O_2$)
अनसेचुरेटेड	रिसिनौलेइक एसिड ($C_{18}H_{34}O_2$)

बायोमास द्वारा उत्पादित जैव स्नेहक कार्बन फुटप्रिंट को घटाने में औद्योगिक इकाइयों में मददगार साबित

होता है। बायोमास, थर्मो केमिकल रूपांतरण से तरल ऊर्जा व गैस ऊर्जा में बदली जा सकती है (Rakesh Dasappa, 2018)। थर्मल अपघटन प्रक्रिया से बायोमास के विघटन से बायो ऑयल (तरल रूप में), बायोचार (ठोस रूप में) और कार्बन डाइऑक्साइड, मिथेन, हाइड्रोजन व कार्बन मोनोऑक्साइड जैसे गैसीय पदार्थ उत्पन्न होते हैं (Gollakota *et al.*, 2016)। दूसरे शब्दों में लिग्नीन, सैल्यूलोज व हेमीसैल्यूलोज जो बायोमास के खंड हैं, वे टूट कर कई छोटे स्वरूप में बदल जाते हैं, जिनमें से बायो ऑयल एक महत्वपूर्ण भाग है। शैवाल से उत्पन्न बायो ऑयल में लकड़ी से उत्पादित हुई बायो ऑयल की तुलना में श्यानता की कमी होती है। इसके अलावा शैवाल उत्पादित बायो ऑयल pH में 9.7 क्षारीय पैमाने पर पाया जाता है। इसका कारण इनमें पाए जाने वाले नाइट्रोजन बाहुल्य पदार्थ इंडोल, पिरीडीन, अमाइड्स, नाइट्राइल्स व अमोनिया है। इनका लिग्नोसेल्यूलोजिक बायो ऑयल से अधिक मिलता दिखलाई देता है, जिसका pH 2 से 3 तक अम्लीय स्वभाव का होता है। लिग्नोसेल्यूलोजिक बायो ऑयल के इस गुण के लिए उत्तरदाई कई ऑक्सीकृत कार्बनिक पदार्थों का समूह होता है, जैसे फिनॉलिक्स, अल्कोहल, एसिड, डिहाइड्रेटेड शर्करा, फ्यूजन, कार्बनिक एवं एरोमेटिक हाइड्रोकार्बन (Zhou *et al.*, 2016)। अम्लीय स्वभाव के लिए खासकर कार्बनिक एसिड व फिनॉल्स उत्तरदायी है। बायो ऑयल में ऑक्सीजन का बाहुल्य होता है। इसमें निम्न कैलोरीफिलिक स्तर पाया जाता है। अधिक ऑक्सीकृत फंक्शनल समूहों की वजह से इनका संग्रहण बहुत कम किया जा सकता है।

4. बायो स्नेहकों का महत्व :

जैसा कि पूर्व में भी जिक्र किया गया है कि सामान्यत: स्नेहकों के निर्माण का आधार पेट्रोलियम जनित होता रहा है, किंतु वेजिटेबल ऑयल या एनिमल ऑयल के प्रति पिछले कुछ दशकों में रुझान बढ़ता रहा है, जिनमें बायो स्नेहकों को भरपूर ध्यान का केंद्र माना जा रहा है। जाहिर है कि यह न सिर्फ सतत स्रोत है, अपितु वातावरण के लिए भी सुरक्षित पाए गए हैं (Almasi *et al.*, 2021)। इनके द्वारा उत्पादित कार्बन डाइऑक्साइड का वातावरण पर बहुत अधिक दुष्प्रभाव नहीं होता है। आने वाले 15-20 वर्षों में



चित्र 2 : जैव स्नेहक की उपयोगिता

इनके उत्पादन को लगभग 15-30% तक बढ़ाना होगा। पिछले शोधों में 350 से भी अधिक तेल उत्पाद योग्य पौधों की पहचान की जा चुकी है। यह खाद्य व आखाद्य दोनों ही श्रेणी के हो सकते हैं। जैसे कनोला, पाम, सोयाबीन, रेंपसीड, ऑलिव, सनफ्लावर, नारियल, जट्रोफा व जोजोबा इत्यादि (Ting & Chen, 2011; Sajeeb & Rajendra Kumar, 2019)। खाद्य तेल वाले पौधों व फसलों में न सिर्फ जल बल्कि खाद का भी खूब इस्तेमाल होता है, जिसके कारण इनको ग्रीन हाउस गैस के बढ़ने में दोषी समझा जा सकता है। ऐसे में कहीं बेहतर होगा कि अखाद्य तेलों पर ज्यादा गौर किया जाए।

बायो ल्यूब्रिकेंट्स या स्नेहक जलीय जीवन और मानव स्वास्थ्य दोनों ही के लिए सुरक्षित है। बायो स्नेहकों, बायोप्लास्टिक, बायोडीजल, बायो एडज़ोरबेंट, बायो स्टिम्युलेट्स व बायो एथेनॉल के निर्माण के लिए प्रोटीन पौधों की पत्तियां, समुद्री खरपतवार, कॉफी पल्प, वनस्पति तेल, पेपर मिल

का स्लज़, लियो सैल्यूलोज तथा अन्य कृषि अपशिष्ट पदार्थ को जांचा गया है (Pillai, 2017)। सामान्यत: राइसब्रान ऑयल, मूंगफली, कॉटनसीड, रेपसीड़, सनफ्लावर, तिल, नारियल, पाम, लिनसीड, कैस्टर, साल, नीम व करंजा से वनस्पति तेल निकाला जाता रहा है। पेट्रोलियम आधारित ल्यूब्रिकेंट्स वातावरण के लिए सही नहीं है। उनकी तुलना में बायो ल्यूब्रिकेंट्स अधिक सुरक्षित है (Silva, 2011)। लेनोलिन एक स्वाभाविक रूप से प्रकृति से पाया जाता है, ये जल से सुरक्षा व स्नेहक की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है (Salimon *et al.*, 2010)।

सारणी-2: महत्वपूर्ण वनस्पति आधारित तेल के फैटी एसिड घटक

फैटी एसिड का प्रकार	सामान्य नाम	मॉलिक्यूलर फॉर्मूला
असंतृप्त फैटी एसिड	रिसिनौलेइक एसिड	$C_{18}H_{34}O_3$
त्रिअसंतृप्त फैटी एसिड	लिनोलेनिक एसिड	$C_{18}H_{30}O_2$
द्विअसंतृप्त फैटी एसिड	लिनोलेइक एसिड	$C_{18}H_{32}O_2$
एकल असंतृप्त फैटी एसिड	ओलेइक एसिड	$C_{18}H_{34}O_2$
असंतृप्त फैटी एसिड	स्टेरिक एसिड	$C_{18}H_{36}O_2$
असंतृप्त फैटी एसिड	पामेटिक एसिड	$C_{16}H_{32}O_2$

बायो ल्यूब्रीकेंट्स, कोटिंग मैटेरियल व साबुन निर्मित करने में कैस्टर बीन का इस्तेमाल होता है, जो कि भारत देश के गुजरात प्रांत में पैदा होता है। इसमें खासकर सीबेसिक व ऑक्जेलिक एसिड का निर्माण होता है। R. communis से उत्पन्न तेल की मात्रा को बढ़ाना, साथ ही अलग-अलग प्रांत से इनके बीज संग्रहित करना इस शोध का जरूरी भाग है। यह राजस्थान, गुजरात व तेलंगाना से एकत्रित किए गए हैं। उत्तर प्रदेश में यह लखनऊ और बनारस से लाए गए हैं। ऑक्सलेट पद्धति से इसका तेल निकाला गया है। जंगली किस्म को व्यवसायिक किस्म से अलग रंग के आधार पर पहचाना जा सकता है। गुजरात प्रांत से प्राप्त तेल किस्म के आधार पर बेहतरीन पाई गई है। यह किस्म 46% तेल पैदा करती है, जिसमें 85% से अधिक रिसेनौलोइक तेल (RA) है। गुजरात के बाद राजस्थान में 84.2% रिसेनौलोइक एसिड पाया गया। रिसेनौलोइक तेल की मात्रा केस्टर पादप की जमीन के जर्मप्लाज्म व वातावरण में अंतर से बदलता रहता है। इन बायो स्नेहकों का जो वनस्पतिक आधारित तेल होता है, उनमें कई संतृप्त, एकल असंतृप्त, द्विअसंतृप्त त्रिअसंतृप्त, फैटी एसिड पाए जाते हैं, जिन्हें सारणीबद्ध किया गया है।

5. निष्कर्ष :

भविष्य में वर्ष 2030 तक बायो स्नेहकों या ल्यूब्रिकेंट्स का वैश्विक बाजार में आवश्यकता 6.06 मिलियन टन तक बढ़ाने की संभावना देखी जा रही है। इनकी बढ़त 3.45% CAGR से मानी जा रही है। बायो स्नेहकों के उत्पादन के द्वारा ये ईंधन के दामों को भी अत्यधिक बढ़ने से रोकेंगे। अपशिष्ट पदार्थों के बायोमास से भी उत्पादित करने से पर्यावरण और आर्थिक रूप से बहुत बेहतरीन विकल्प साबित होगा।

संदर्भ

1. Álvarez, Alejandro, *etal*(2022). Aroma compounds produced by liquid fermentation with Saccharomyces cerevisiae and Zygosaccharomyces rouxii from castor oil through cell permeabilization, Biocatalysis and Agricultural Biotechnology, Volume 39, 102243.
2. Panchal, T.M., Patel, A., Chauhan, D.D., Thomas, M., Patel, J.V., A Methodological Review on Bio-Lubricants from Vegetable Oil Based Resources. Renew. Sustain. Energy Rev., 70, 65, 2017.
3. Rakesh, N., Dasappa, S., Biosyngas for Electricity Generation Using Fuel Cells—A Gas Quality Assessment. In Proceedings of the 26th European Biomass Conference and Exhibition, pp. 708–712 Copenhagen, Denmark, 2018.
4. Rakesh, N., Dasappa, S., Carbon Deposition on the Anode of a Solid Oxide Fuel Cell Fueled by Syngas—A Thermodynamic Analysis. In Proceedings of the

7th International Conference on Advances in Energy Research; Springer Proceedings in Energy; Bose, M., Modi, A., Eds., pp. 1083–1090 Springer: Singapore, 2021.

5. Singh, A., Gupta, A., Rakesh, N., Shivapuji, A.M., Dasappa, S, Syngas generation for methanol synthesis: Oxy-steam gasification route using agro-residue as fuel. Biomass Convers. Biorefinery, 12, 1803, 2022.
6. Eschenbacher, A., Fennell, P., Kensen, A.D., A review of recent research on catalytic biomass pyrolysis and low-pressure hydropyrolysis. Energy Fuels, 35, 18333, 2021.
7. Mika, L.T., Cséfalvay, E., Németh, Á., Catalytic conversion of carbohydrates to initial platform chemicals: Chemistry and sustainability. Chem. Rev., 118, 505, 2018.
8. Syahir, A.Z., Zulkifli, N.W.M., Masjuki, H.H., Kalam, M.A., Alabdulkarem, A., Gulzar, M., Khuong, L.S., Harith, M.H., A Review on Bio-Based Lubricants and Their Applications. J. Clean. Prod., 168, 997, 2017.
9. Bart, J.C.J., Gucciardi, E., Cavalloro, S., (Eds.) Biolubricants: Science and Technology; Woodhead Publishing Series in Energy; Woodhead Publishing: Cambridge, UK; Philadelphia, PA, USA, 2013.
10. Joseph, P.V., Saxena, D., Sharma, D.K., Study of Some Non-Edible Vegetable Oils of Indian Origin for Lubricant Application. J. Synth. Lubr., 24, 181, 2007.
11. Arumugam, S., Sriram, G., Effect of Bio-Lubricant and Biodiesel-Contaminated Lubricant on Tribological Behavior of Cylinder Liner–Piston Ring Combination. Tribol. Trans., 55, 438, 2012.
12. Jahromi, H., Adhikari, S., Roy, P., Shelley, M., Hassani, E., Oh, T.-S., Synthesis of novel biolubricants from waste cooking oil and cyclic oxygenates through an integrated catalytic process. ACS Sustain. Chem. Eng., 9, 13424, 2021.
13. Aisyah, I.S., Caesarendra, W., Kurniawati, D., Maftuchah, M., Agung, D., Glowacz, A., Oprz˛edkiewicz, K., Liu, H., Study of Jatropha Curcas Linn and Olea Europaea as Bio-Oil Lubricant to Physical Properties and Wear Rate. Lubricants, 9, 39, 2021.
14. Gollakota, A.R.K..,Reddy, M., Subramanyam, M.D., Kishore, N., A Review on the Upgradation Techniques of Pyrolysis Oil. Renew. Sustain. Energy Rev., 58, 1543,2016.
15. Zhou, X., Broadbelt, L.J. Vinu, R., Mechanistic Understanding of Thermochemical Conversion of Polymers and Lignocellulosic Biomass. Advances in Chem. Eng., 49, 95, 2016.
16. Almasi, S., Barat, G., Gholamhassan, N., Masoud, D. S., A review on bio-lubricant production from non-edible oil-bearing biomass resources in Iran: Recent progress and perspectives. J. Clean. Prod., 290, 125830, 2021.
17. Panchal,T.M., Patel,A., Chauhan, D.,Thomas, M., Patel, J.V., A methodological review on bio-lubricants from vegetable oil based resources. Renew. Sustain. Energy Rev., 70, 65, 2017.
18. Ting, C.-C., Chen, C.-C., Viscosity and working efficiency analysis of soybean oil based bio-lubricants. Measurement.,44, 1337, 2011.
19. Sajeeb, A., Rajendrakumar, P.K., Comparative evaluation of lubricant properties of biodegradable blend of coconut and mustard oil. J. Clean. Prod., 240, 118255, 2019.
20. Salimon, J., Noor, D.A.M., Nazrizawati, A., Firdaus, M.M., Noraishah, A., Fatty acid composition and physicochemical properties of Malaysian castor beanRicinus communis L. seed oil. Sains Malays., 39, 761, 2010.
21. Pillai, L., Biolubricants from various sources. Int. j. res. anal. Rev., 41, 322, 2017.
22. Silva, J., da., Biodegradable lubricants and their production via chemical catalysis. INTECH Open Access, 2011.

जीवनशैली गत रोगों की चिकित्सा में औषधीय पौधे चित्रक (Plumbago zeylenica) का महत्व – साहित्य समीक्षा

डॉ. भावना सिंह[1]
डॉ. प्रीति शर्मा[2]
डॉ. रोहित रस्तोगी[3*]
डॉ. नीति टंडन[4]

[1]जी.एस. आयुर्वेद मेडिकल कॉलेज एवं अस्पताल, पिलखुवा, हापुड़, उत्तर प्रदेश
[2]कृतिका आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज एण्ड हॉस्पिटल, बरेली, उत्तर प्रदेश
[3]एबीईएस इंजीनियरिंग कॉलेज गाजियाबाद
[4]विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मध्य प्रदेश
Email: [1]singhbsbharti@gmail.comm
[2]preetisharma7982@gmail.com
[3]rohitrastogi.shantikunj@gmail.com
[4]tandon.neeti2019@gmail.com

भाग 1: आयुर्वेद चिकित्सा में औषधीय पौधा चित्रक (Plumbago zeylenica) – सामान्य जानकारी एवं गुणधर्म[1]

सारांश

आयुर्वेद भारतवर्ष की प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति है, यह मात्र चिकित्सा विज्ञान ही नहीं अपितु मानव जीवन जीने की कला को भी बताता है। आयुर्वेद का मुख्य सिद्धांत है स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य को बनाए रखना और अगर कोई रोगी हो जाए तब उसकी चिकित्सा करना। इस प्रकार से आयुर्वेद का पहला उद्देश्य स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का संरक्षण करना है। आयुर्वेद में अनेकों अनेक दिव्य औषधियों का वर्णन मिलता है, इनमें से एक है, चित्रक। यह बहुत ही महत्वपूर्ण औषधि है, इसका मुख्य कर्म हमारे शरीर की अग्नि पर होता है। आयुर्वेद के अनुसार 13 प्रकार की अग्नि बताई गई हैं, यहां अग्नि से हम मेटाबॉलिज्म समझ सकते हैं। आजकल वर्तमान में जीवन शैली परिवर्तित होने से अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हो रही है। इनमें मुख्य रूप से थायराइड, डायबिटीज, हृदय रोग एवं स्थौल्य रोग है। इन सब रोगों की चिकित्सा में चित्रक बहुत ही उपयोगी औषधि है। प्रस्तुत लेख में चित्रक पौधे के बारे में सामान्य जानकारी एवं गुणधर्म का वर्णन है।

पृष्ठभूमि एवं अध्ययन की प्रेरणा

औषधियों के प्रचुर ज्ञान के साथ-साथ आयुर्वेद हमें अनुसंधान के लिए विशाल क्षेत्र भी प्रदान करता है। क्षेत्रों में पाया जाने वाला पादप चित्रक आयुर्वेदिक साहित्य में एक महत्वपूर्ण औषधि के रूप में वर्णित है।

यह अध्ययन स्वदेशी औषधियों के ज्ञान के महत्व को दर्शाता है। यह हमें प्राकृतिक जड़ी बूटियों और पारंपरिक औषधीय प्रणालियों के प्रति जागरूक होने के लिए भी प्रोत्साहित करता है। इस अध्ययन की सहायता से हम चित्रक के अन्वेषण के लिये मार्ग प्रशस्त करते हैं।

[1] भाग 2: चित्रक के चिकित्सीय गुणों की साहित्य समीक्षा अन्यत्र उपलब्ध है।

1. प्रस्तावना

1.1 स्वास्थ्य संरक्षण का वैश्विक परिदृश्य और आयुर्वेद की भूमिका

यह सर्वविदित है कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान रोग विशेष की चिकित्सा करता है, जबकि आयुर्वेद व्यक्ति को रोग से लड़ने के लिए समर्थ बनाता है और व्यक्ति विशेष की चिकित्सा करता है। वर्तमान में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के पास विभिन्न प्रकार की आधुनिक जीवाणु नाशक दवाएं उपलब्ध हैं। यह जीवाणु के प्रजनन को रोकने के लिए अथवा उनको नष्ट करने के लिए दी जाती हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि रोगी की रोग प्रतिरोधक क्षमता और भी कम हो जाती है। इसके विपरीत आयुर्वेदिक समग्र चिकित्सा पद्धति है, जिसके अंतर्गत रोग के नाश के साथ-साथ व्यक्ति की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ाई जाती है। आधुनिक चिकित्सा सदैव रोग पर केंद्रित होती है रोगी पर नहीं अर्थात यह पूर्ण स्वास्थ्य पर नहीं बल्कि एक भाग पर केंद्रित है [1]। वर्तमान में तेजी से परिवर्तित होती जीवन शैली एवं उसके हानिकारक परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हो रही है। इनमें मुख्य रूप से थायराइड, डायबिटीज, हृदय रोग एवं स्थौल्य (मोटापा) रोग हैं। इस विकराल होती समस्या पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। जन सामान्य के स्वास्थ्य संरक्षण के लिये समग्र चिकित्सा पद्धति की आवश्यकता है। आयुर्वेद एक सदियों पुराना चिकित्सा विज्ञान है, जो भारत की प्राचीन वैदिक परंपरा से उत्पन्न है। इसे जीवन के विज्ञान के रूप में समझना अधिक उचित है। आयुर्वेद मूल रूप से प्रथम, व्यक्ति विशेष के स्वास्थ्य संरक्षण तत्पश्चात रोगी के रोग की चिकित्सा करता है [2]। आयुर्वेद चिकित्सा (चरक संहिता) विज्ञान में व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए हितकारी आहार और विहार का विस्तृत विवरण मिलता है। योग, आहार, रसायन एवं स्वस्थवृत्त के नियमों का पालन करके जनसामान्य उत्तम स्वास्थ्य एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता प्राप्त कर सकता है। इसके साथ ही शरीर में रोग उत्पन्न होने पर प्रकृति से प्राप्त औषधियों द्वारा चिकित्सा की जाती है जिनका शरीर पर प्राय: कोई दुष्प्रभाव नहीं होता है। दोषों के होने पर शरीर में विषाक्त तत्वों के बढ़ जाने पर पंचकर्म चिकित्सा द्वारा शरीर का शोधन किया जाता है और इस प्रकार रोग समूल नष्ट कर दिया जाता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि समग्र दृष्टिकोण से उपचार केवल आयुर्वेद के माध्यम से ही संभव है।

1.2 औषधीय पौधे प्रकृति का वरदान

विश्व की लगभग 80% जनसंख्या प्राथमिक स्वास्थ्य संरक्षण के लिए प्रायः औषधीय वनस्पतियों पर निर्भर है। औषधीय आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति, का आधार प्रकृति से प्राप्त खनिज तत्व एवं वनस्पतियां हैं। वर्तमान समय में आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति जन जागरूकता बढ़ रही है इसके साथ ही औषधीय पौधों का उपयोग विश्व स्तर पर तेजी बढ़ रहा है। वर्तमान में, वैश्विक स्तर पर लगभग 70,000 से 80,000 औषधीय पौधों की प्रजातियों का चिकित्सा में उपयोग किया जा रहा है। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में अनेक प्रभावकारी जड़ी-बूटियों का वर्णन किया गया है, उनमें से एक चित्रक है।

1.3 चित्रक (Plumbago zeylenica)

चित्रक एक चिरपरिचित एवं महत्वपूर्ण औषधि है इसका क्षुप छोटा बहुवर्षायु व झाडीदार होता है। यह प्रायः उद्यानों में और वनों में छायादार स्थानों में उगती है। यह पूरे भारत और श्रीलंका में व्यापक रूप से पाई जाती है। चित्रक एक महत्वपूर्ण औषधीय वनस्पति है जो मुख्य रूप से पश्चिम बंगाल और दक्षिणी क्षेत्रों में पाया जाता है। यह दुनिया भर में उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय देशों में पाया जाता है। इसका पौधा छोटा व झाडीदार होता है। यह एक सीधा और लंबे समय तक हरा-भरा रहने वाला पौधा होता है। इसका तना कठोर, फैला हुआ गोलाकार सीधा तथा रोमरहित होता है। इसके पत्ते लगभग 3.8-7.8 से.मी. तक लम्बे एवं 2.2–3.8 से.मी. तक चौड़े होते हैं [7]। इसके फूल नीले-बैंगनी अथवा हल्के सफेद रंग के होते हैं (कृपया तालिका 4 और 5 देखें)।

इसका मूल अंगुलि के समान मोटा होता है व छाल पर छोटे-छोटे उभार होते हैं। स्वाद में कटु, तीक्ष्ण होता है व इसकी गन्ध अप्रिय होती है। सितम्बर-नवम्बर माह में पुष्पकाल होता है फल उत्पत्ति अक्टूबर-दिसम्बर माह में होती है। पुष्परंग के आधार पर चित्रक को आचार्यों ने अनेक प्रकार से कहा है वाग्भट्ट ने पुष्पभेद से तीन प्रकार के चित्रक का वर्णन किया है [8]। (कृपया तालिका 6 देखें)।

यह मेटाबॉलिजम (Metabolism) को उत्तेजित करती है, अतः स्थौल्य (Obesity) में वजन घटाने के लिए उपयोगी है। यह थायरॉयड के कार्यों को उत्तेजित



चित्र 1



चित्र 2



चित्र 3



चित्र 4

करती है, अतः हाइपोथायरायडिज्म (Hypothyroidism) में उपयोगी है। यह अग्निमांद्य एवं यकृत विकारों की अमोघ औषधि है। आयुर्वेद में इसको अनेक रोगाधिकारों हेतु प्रयोग किया जाता है जैसे कि विषम ज्वर (मलेरिया, डेंगू, जीर्ण ज्वर, विबंध, प्रमेह, यकृत रोग) इत्यादि। चित्रक वटी, चित्रकहरितकी, चित्रकाद्यधृत आदि इसके महत्वपूर्ण योग है। यह रस में अत्यंत कटु होता है इसका प्रयोग मुख्य रूप से ज्वर, अतिसार, ग्रहणी रोग, श्वसन संबंधी संक्रमण रोग, अर्श (piles) एवं यकृत रोगों में किया जाता है। क्लिनिकल परीक्षणों में यह पाया गया कि इसमें अग्नाशय कैंसर के चिकित्सीय प्रभाव की क्षमता है [3]।

2. सामान्य गुणधर्म

यह प्रायः भारतवर्ष, पाकिस्तान, श्रीलंका आदि के मैदानी क्षेत्रों में बहुतायत से पाया जाता है। चित्रक (प्लंबैगो जेलेनिका) प्लंबैगिनेसी परिवार से संबंधित एक औषधीय जड़ी बूटी है। चित्रक का लैटिन नाम प्लम्बैगो जेलनिका (plumbago zeylanica Linn, Syn & Plumbago scandens Linn) है। इसके औषधीय गुणों के कारण यह भारत के अधिकांश हिस्सों में उगाया जाता है। आयुर्वेदिक साहित्य में चित्रक का विस्तृत वर्णन किया गया है (कृपया तालिका 1 देखें)।

2.1 चित्रक निष्पत्ति-

चिंत बुद्धि त्रायते। लैड् पालनें आतोडनुपइति क। स्वार्ये कन्। अर्थात यह अग्नि को प्रदीप्त करने वाला होने के कारण बुद्धि का सम्यक् रक्षण करता है। मनुष्यों को यह समुचित स्वस्थ रखता है। (अमरकोष/80)

तालिका 1: पर्याय निरूक्ति

पीठी	पिठति हनस्ति सम्यक् विलश्राति वा। वातादि दोषाश्चेति। ग्रहणी कुष्ठादि वातादि रोगान्।	ग्रहणी कुष्ठादि वातादि दोषों का बराबर नाश करता है।
चित्रक	चित्तं बुद्धिं त्रायते इति। चेतश्चित् चितो जनान् त्रायते इति।	यह अग्नि को प्रदीप्त करने वाला होने के कारण बुद्धि का सम्यक रक्षण करता हैं। मनुष्यों को यह समुचित स्वस्थ रखता है।
वह्निसंज्ञक	वह्निः इति संज्ञाडस्य इति।	अग्नि तथा तदर्थक समग्र शब्द इसकी भी संज्ञा है। अनल दहन ये जितने अग्नि के नाम हैं, वे सब चित्रक के भी है।

तालिका 2: अन्य भाषाओं में चित्रक के नाम [4]

हिन्दी नाम	चीत, चीता, चित्रक, चित्ता, चितरक, चितउर
तेलुगु नाम	चित्रमुलामु, अग्निमथा, तेलचित्रा
अंग्रेजी नाम	लीडवॉर्ट सिलोन लेडवर्ट (Ceylon leadwort)
बंगाली नाम	चिता, चितु
मराठी नाम	चित्रमूल, चित्रका
गुजराती नाम	चित्रो, चित्रा, पिटारो
तमिल नाम	चित्तिरि, चित्तिरा पेंचितर, कोडिवेल
अरबी नाम	शीतराज
फारसी नाम	शीतार
कन्नड़ नाम	चित्रमूला, बिलिचित्रामुला
पंजाबी नाम	चित्रा
मलयालम नाम	वेल्लाकोटुवेरी, कोटुबेली

वनस्पतियों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए वैदिक काल से उनका वर्गीकरण किया गया। उनके सामान्य गुण रूप के आधार पर उन को अलग-अलग वर्गों में रखा गया। आयुर्वेद में भी आचार्य ने वनस्पति के रूप गुण कर्म के आधार पर उनका वर्गीकरण किया है [5] (कृपया तालिका 2 देखें)।

तालिका 3: सहिंताओं में चित्रक का वर्गीकरण

चरक संहिता	सुश्रुत संहिता	वाग्भट्ट
लेखनीय महाकषाय	पिप्पल्यादि गण	मुस्तादि गण
दीपनीय	मुस्तादि गण	मुष्कादि गण
शूलप्रशमन	आमलक्यादि गण	पिप्पल्यादि गण
अर्शोघ्न	वरूणादि गण	वरूणादि गण
लेखनीय	आरग्वधदि गण	आरग्वधदि गण

निघंटु .....आयुर्वेदिक साहित्य में निघंटु को एक शब्दावली के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें पर्यायवाची समूह, औषधियों, पौधों, पशुओं, खनिजों या किसी भी चीज के नाम शामिल हैं, जो मनुष्य शरीर को भोजन या औषधियों के रूप में दिया जा सकता है [6] (कृपया तालिका 3 देखें)।

तालिका 4: वनस्पति विज्ञानानुसार वर्गीकरण [11]

जगत	पादप
वर्ग	मैगनोलियोपसिडा
गुण	रैननकुलेल्स
कुल	प्लम्बैजिनेसी
वंश	प्लम्बैगो
जाति	जेलेनिका

तालिका 5: पुष्पभेद से तीन प्रकार के चित्रक

प्रकार	निघंटु
दो-श्वेत, रक्त	राज निघंटु
चार- श्वेत, रक्त, नील, कृष्ण	मदनपाल निघंटु
तीन- श्वेत, रक्त, पीत	वाग्भट्ट

तालिका 6: निघंटुओं में गुण कर्मों का अध्ययन

कर्म	भावप्रकाश निघण्टु	धनवन्तरि निघण्टु	राज निघण्टु	मदनपाल निघण्टु	प्रिय निघण्टु
रस	कटु	कटु			
गुण	तीक्ष्ण लधु रूक्ष	तीक्ष्ण		रूक्ष लधु	रूक्ष लधु
विपाक	कटु				
वीर्य	उष्ण	उष्ण	उष्ण	उष्ण	उष्ण
दोषकर्म	वात कफनाशक	कफशामक	कफहर	त्रिदोषहर	वात नाशक

रंग के आधार पर यह मुख्यतः तीन प्रकार का होता है:
सफेद चित्रक (Plumbago zeylanica Linn)
लाल चित्रक (Plumbago indica Linn)
नीला चित्रक (Plumbago auriculata Lam)

श्वेत चित्रक विशेषता बंगाल, उत्तरप्रदेश, दक्षिण भारत व श्रीलंका तथा रक्त चित्रक जो रवासिया पहाड, सिक्किम कूच बिहार में अधिक मिलता है। इसकी खेती पूरे भारत में की जाती है।

रासायनिक संगठन- इसमें मुख्यतः प्लम्बेजिन नामक तत्व पाया जाता है। जो कटु, पीत व स्फटिकीय होता है। यह 0.91 प्रतिशत होता हैं। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र द्राक्ष शर्करा, फलशर्करा तथा प्रोटिएज व इनवर्टेज किण्व तत्व होते हैं [9]।

आयुर्वेद में किसी भी औषधि की क्रिया उसके रस पंचक (गुण और कर्म) पर आधारित होती हैं अर्थात् रस (स्वाद), गुण, वीर्य (शक्ति), विपाक (उपापचय के बाद परीक्षण) और कर्म (चिकित्सीय क्रिया)। निघंटुओं में गुण कर्मों का अध्ययन एवं चिकित्सकीय कर्म व उपयोग का वर्णन किया गया है।

2.2 गुणकर्म-

चित्रक कटु रस, कटु विपाकी, लधु, रूक्ष, तीक्ष्ण गुण व उष्ण वीर्य होता है कफवातघ्न व पित्तवर्धक होता है।

कर्म- आयुर्वेद चिकित्सा ग्रंथों में चित्र के अनेक कर्म बताए गए हैं यह मुख्य रूप से लेखन, दीपन, पाचन, अर्शोघ्न, कृमिघ्न, ज्वरघ्न इत्यादि कर्म है और यकृत विकार, रक्ताल्पता ग्रहणी, कुष्ठ, कास, शूल, छर्दि, गुल्म आदि रोगों में उपयोगी है।

चित्रक के प्रयोज्यांग मूल और पत्र है। इसकी मात्रा- 1-2 ग्राम इसके विशिष्ट योग- चित्रकादि गुटिका, चित्रकहरीतकी, चित्रक घृत, चित्रकादि चूर्ण है।

चित्रक से निर्मित औषधीय योग तालिका 7 में दिये गए हैं

तालिका 7: चित्रक से निर्मित योग

क्र.सं.	योग के नाम
1.	योगराज गुग्गुलु
2.	सप्त विंशति गुग्गुलु
3.	पुर्ननवा गुग्गुलु
4.	पंचतिक्त गुग्गुलु घृत
5.	व्योषादि गुग्गुलु
6.	चित्रकादि वटी
7.	चित्रक घृत
8.	चित्रक हरीतकी
9.	दशमूलारिष्ट
10.	द्राक्षासव
11.	लौहासव
12.	अश्वगंधारिष्ट
13.	यकृतप्लीहारि लौह
14.	चित्रकादि तैल
15.	चित्रकादि चूर्ण
16.	अग्नितुण्डी वटी
17.	चित्रक रसायन
18.	एलादि घृत
19.	अभयामोदक
20.	तेजोवत्यादि घृत

3. चित्रक के दुष्प्रभाव

चित्रक के दुष्प्रभाव इस प्रकार हैंः

प्लंबैगो जेलेनिका के मूल अर्क में पाया जाने वाला प्लंबैगिन, उच्च खुराक में दिए जाने पर पेट में दर्द और जलन पैदा करता है। अन्य लक्षणों में त्वचा की लालिमा और खुजली, फैली हुई पुतलियाँ, मायोटोनिया, हाइपोटोनिया, अनियमित नाड़ी और श्वसन विफलता शामिल हैं। जड़ें या टहनियाँ, जब बाहरी रूप से लगाई जाती हैं। तो त्वचा की लालिमा और फफोले का कारण बनती हैं [10]। गर्भावस्था के सभी चरणों में इससे बचना चाहिए, क्योंकि इसमें प्रजनन-विरोधी गतिविधि होती है।

4. उपसंहार

साधारणतः चित्रक से सफेद चित्रक (plumbago zeylanica) ही ग्रहण किया जाता है। सफेद चित्रक वात, पित्त और कफ तीनों दोषों को शान्त करता है। यह तीखा, कड़वा और पेट के लिए गरम होने के कारण कफ को शान्त करता है। भूख बढ़ाता है, भोजन को पचाता है, उल्टी को रोकता है, पेट के कीड़ों को खत्म करता है। यह खून तथा माता के दूध को शुद्ध करता है। यह सूजन को ठीक करता है।

यह टॉयफायड बुखार को समाप्त करता है। चित्रक की जड़ (plumbago zeylanica root घावों और कुष्ठ रोग को ठीक करती है। यह पेचिश, प्लीहा यानी तिल्ली की वृद्धि, अपच, खुजली आदि विभिन्न चर्मरोगों, बुखार, मिर्गी, तंत्रिकाविकार यानी न्यूरोडीजिज और मोटापा आदि को भी समाप्त करता है। सफेद चित्रक गर्भाशय को बल प्रदान करता है, बैक्टीरिया और कवकों को नष्ट करता है यह कैंसररोधी यानी एंटीकैंसर है तथा लीवर के घाव को ठीक करता है।

इसकी जड़ में एंटीऑक्सीडेंट, मलेरिया-रोधी, प्रजनन-रोधी, एंटीबायोटिक और कैंसर-रोधी जैसे विभिन्न चिकित्सीय गुण हैं। इस प्रकार चित्रक औषधीय पौधा जीवन शैलीगत रोगों की चिकित्सा में वरदान है।

संदर्भ

1. Mandal, I.S.Y, Singh, L.R., Singh K. (2009). Health and complete medicines, Ayurved Joural, 1. 2-Agnivesa, elaborated by Caraka and Dridabala, Edited with 'Charaka-Chandrika' Hindi commentary along with special deliberation by Trip-

athi Dr. Brahmanand, Caraka Samhita, 3rd Edition, Chaukambha Surbharati Prakashan, Varanasi 1994.

2. Chen, C.A., Chang, H.H., Kao, C.Y., Tsai, T.H. Chen, Y.J. (2009). Plumbagin, isolated from Plumbago zeylanica, induces cell death through apoptosis in human pancreatic cancer cells. Pancreatology: official journal of the International Association of Pancreatology (IAP)[et al] [Internet]. 2009 [cited 2022 Feb 8]; 9(6):797–809.
3. Singh, Palamrit (2008). Dhanwantari Nighantu, Shatpushpadi Varga, shlok no.80-81, chaukhambha Orientalia Delhi, 2008; 94.
4. Sharma, P.V., Sharma Guruprasad (1979). Kaiyadeva, Kaiyadeva Nighantu, Aoushadh Varga, shlok no.1177-1181, Chaukambha Orientatia, Varanasi, 1979; 217.
5. Sharma, P.V., Priya Nighantu, Pipalliyadi Varga, shlok no.12, Chaukambha Surabharati Prakashana, Varanasi, 2004; 59.
6. Patiyala Ramaprasad (1998). Madanapala Nighantuwith Hindi commentary, shunthiyadi varga, shlok no.21-22, Pub. by Khemraj Srikrishnadas Prakashana, Bombay, 1998.
7. Tripathi Indradev, Raj Nighantu, Acharya Vishwanath Durvedi, Pipalliyadi Varga, shlok no.45-49 , Pub. Krishna Das Academy Varanasi, 1982; 143.
8. Arya N., Sharma A. (2015). The therapeutic and toxicological effect of chitrak plumbago zeylanica L & A REVIEW-AYUSHDHARA [Internet]- 2015 Dec 8;2(4) - Available from: https://ayushdhara-in/indeÛ-php/ayushdhara/article/view/78

गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड का सफल आयुर्वेदिक प्रबंधन: एक अध्ययन

डॉ. अनामिका चौधरी[1]
प्रो. भावना सिंह[2]
डॉ. रोहित रस्तोगी[3*]
मोहित सिंह[4]
डॉ. नीति टंडन[5]

[1,2]देवभूमि आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज एवं हॉस्पिटल, देहरादून
[3]एबीईएस इंजीनियरिंग कॉलेज गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
[4]शिवालिक इंस्टिट्यूट ऑफ़ आयुर्वेदा एंड रिसर्च, देहरादून
[5]विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
Email:
[1]*choudharyanamika51@gmail.com*
[2]*singhbsbharti@gmail.com*
[3]*rohitrastogi.shantikunj@gmail.com*
[4]*drmohit1994@gmail.com*
[5]*tandon.neeti2019@gmail.com*

सारांश

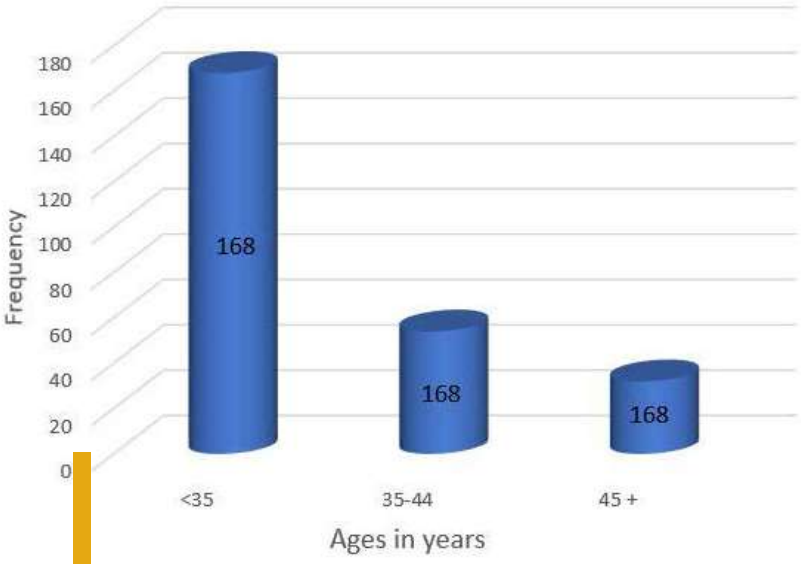
आजकल की जीवन शैली में गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड (fibroid uterus) एवं सिस्ट की समस्या बढ़ती जा रही है। गर्भावस्था काल में गर्भाशय का वृद्धि होना सामान्य बात है, परंतु मायोमा (myoma), लियोमायोमा (leiomyoma) के रूप में बढ़ना जिसको फ़ाइब्रॉइड या रसौली कहा जाता है, एक बहुत गंभीर स्वास्थ्य समस्या है। आयुर्वेदिक मतानुसार इसका वर्णन ग्रंथि के अंतर्गत किया गया है। गर्भाशय ग्रंथि कफ, वात दोष, रस, रक्त ,मांस, मेद,आर्तव दुष्टि और अग्निमांद्य के कारण उत्पन्न होती है। यह शोध पत्र एक ऐसे केस अध्ययन पर आधारित है जिसमे गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड के सफल आयुर्वेदिक प्रबंधन का वर्णन किया गया है। यह केस एक 38 वर्षीय महिला का है, जिसको गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड की समस्या के साथ-साथ अम्लपित्त और अग्निमांद्य की भी समस्या थी। इसके लिए रोगी को आयुर्वेदिक औषधियों जैसे वृद्धिवाधिका वटी, फाइब्रोनिल टैबलेट, वरुण-शिग्रु क्वाथ, कामदुधा रस, आम पाचक का सेवन 5 माह तक कराया गया, उसके बाद उसका यूएसजी (ultrasonography) करवाने पर गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड अनुपस्थित पाया गया।

शब्द : गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड, गर्भाशय मायोमा, आयुर्वेदिक प्रबंधन

1. प्रस्तावना

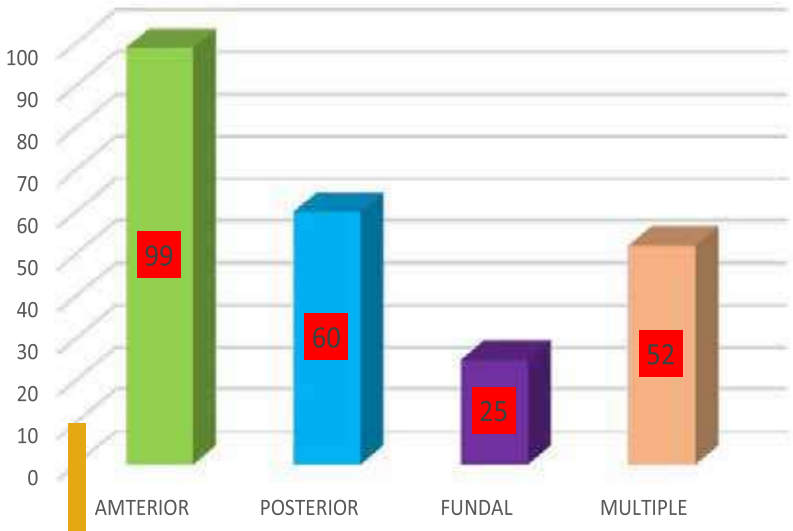
आज के परिवेश में अनेकों स्वस्थ समस्याएं हमारे लिए चिंता का विषय बनी हुई है। गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड विश्व स्तर पर एक बहुत बड़ी समस्या है। जिससे अनेकों महिलाएं प्रभावित हैं। गर्भाशय की परत में सामान्यतः प्रजनन काल में वृद्धि होती है। गर्भाशय मायोमा(MYOMA) को प्रायः 3 स्तरों में वर्गीकृत किया गया है सबम्यूकस, इंट्राम्यूरल और सबसरोसल। यह एस्ट्रोजन हार्मोन के कारण गर्भाशय की दीवार की मध्य परत में एक असामान्य मांसपेशी कोशिका से विकसित होती है तथा विकसित हो कर मायोमा का रूप ले लेता है, इसी को लिओमोमा (LEIOMYOMA) या गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड (FIBROID UTERUS) कहा जाता है।

मायोमा या गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड हिस्टरेक्टामी (महिला के गर्भाशय को हटाने के लिए एक शल्य चिकित्सा प्रक्रिया) का प्रमुख कारण रहा है, जिससे यह सर्जरी दुनिया भर में तीसरी सबसे ज्यादा होने वाली सर्जरी है क्योंकि मायोमा वृद्धि पर एथेनिल एस्ट्रोजन प्रोजेस्ट्रोन युक्त गोलियों का प्रभाव स्पष्ट नहीं है। भले ही रक्तस्राव और



चित्र 1 : आयु वर्ग के आधार पर फ़ाइब्रॉइड होने संभावना

कष्टार्तव से संबंधित लक्षणों का इलाज इन गोलियों से किया जाता है। परन्तु मायोमा का आकार अपरिवर्तित रहता है।[2] इसलिए हिस्टरेक्टॉमी फ़ाइब्रॉइड के लिए एकमात्र निश्चित, स्थायी समाधान समझा जाता है। परन्तु आयुर्वेदिक ग्रंथो में इसकी औषधीय चिकित्सा का भी वर्णन है।



चित्र 2 : गर्भाशय में फ़ाइब्रॉइड की स्थिति के आधार पर वितरण

गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड को आयुर्वेद में गर्भाशय ग्रंथि के अंतर्गत वर्णन किया गया है, जिसमें वात दूषित हो, मांस, रक्त, मेद को प्रभावित कर कफ के साथ मिलकर कठिन, गांठदार, उभार सूजन को पैदा करता है।[3]

माधव निदान में आचार्य ने अर्बुद का वर्णन करते हुए कहा है कि शरीर के किसी भाग में बढ़े हुए दोष मांस तथा रक्त को दूषित करके गोल, निश्चल, अल्प पीड़ा वाले, बड़े गहरे देर से बढ़ने और ना पकने वाले मांस पिंड के समान उन्नत सूजन को उत्पन्न कर देते हैं ,विद्वान उसे अर्बुद कहते हैं। यह 6 प्रकार के हैं और उनके लक्षण ग्रंथि के समान होते हैं। अर्बुद को दो प्रकार से वर्णित किया गया है– (1) सौम्या अर्बुद और (2) घातक अर्बुद। आचार्य चरक एवं आचार्य सुश्रुत ने भी रक्त और मांस अर्बुद को घातक अर्बुद श्रेणी में रखा है। वही मायोमा यानी पेशी अर्बुद और मेद अर्बुद(lipoma) को सौम्या अर्बुद की श्रेणी में वर्णित किया गया है इसीलिए गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड में और अर्बुद में ग्रंथि की चिकित्सा के समान ही चिकित्सा की जाती है।[4]

रिसर्च के द्वारा यह सामने आया है कि गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड 12 से 35 वर्ष में होने की संभावना ज्यादा होती है, 35 से 44 वर्ष में संभावना मध्य होती है, परंतु 45 वर्ष उपरांत यह संभावना बहुत कम हो जाती है। यह डाटा इस बात को प्रदर्शित करता है कि महिलाओं के प्रजनन काल में इसके होने की संभावना सर्वाधिक है।[5]

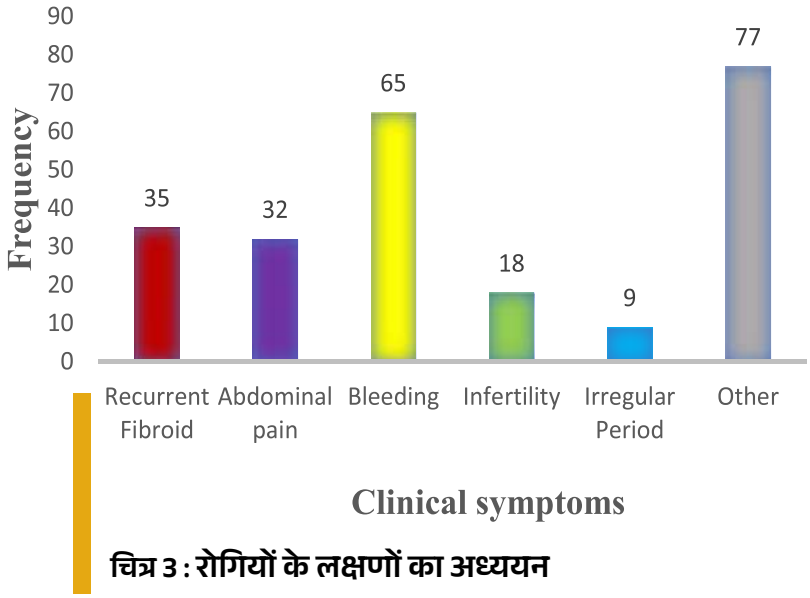
उपरोक्त चित्र 1. से यह निष्कर्ष निकलता है कि 35 वर्ष से पूर्व गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड होने की संभावना अत्यधिक है एवं 45 वर्ष के बाद संभावना बहुत कम होती है।

कुछ अन्य रिसर्च में फ़ाइब्रॉइड के गर्भाशय में होने की स्थिति को जाना गया, गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड गर्भाशय में मुख्यतः 4 स्थितियों (POSITION) में पाया जाता है। एंटीरियर (anterior), पोस्टीरियर (posterior), फंडल (fundal), मल्टीपल (multipal)। 236 रोगियों पर किए गए एक अध्ययन में यह पाया गया कि आंतरिक फ़ाइब्रॉइड की स्थिति वाले रोगी सर्वाधिक है जिनकी संख्या 99, पोस्टीरियर (posterior) फ़ाइब्रॉइड के 60 रोगी थे, फंडल फ़ाइब्रॉइड के 25 तथा 52 रोगी मल्टीपल फ़ाइब्रॉइड के थे।[5]

उपरोक्त चित्र 2 यह दर्शाता है कि एंटीरियर फ़ाइब्रॉइड सबसे अधिक 41.9%, वही पोस्टेरियर फ़ाइब्रॉइड 25.4%, फंडल फ़ाइब्रॉइड 10.6% एवं मल्टीप्ल फ़ाइब्रॉइड 22% रोगियों में पाया गया।

चित्र 3: गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड के रोगी के लक्षणों के बारे में अगर बात करें तो अनियमित माहवारी, खून की कमी, माहवारी के दौरान अत्यधिक दर्द, बार-बार पेशाब करने की जरूरत जैसा महसूस, होना गर्भधारण में असमर्थ, कमर और पेट दर्द की समस्या लगातार बनी रहती है। उपरोक्त वर्णित शोध में जब रोगियों के लक्षणों का अध्ययन किया गया तो यह पाया गया कि 236 रोगियों में सबसे आम लक्षण रक्तस्राव 27.5%, फिर आवर्तक फ़ाइब्रॉइड 14.8%, पेट दर्द 13.6% शामिल था। प्रजनन क्षमता की कमी 7.6% और अनियमित मासिक धर्म 3.8%, अन्य 32.6% में कम से कम दो लक्षण थे।[5]

इस शोध पत्र में वर्णन करेंगे आयुर्वेदिक ग्रंथो में लिखित गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड के सफल प्रबंधन का।



चित्र 3 : रोगियों के लक्षणों का अध्ययन

केस वर्णन

एक 38 वर्षीय महिला अपने यूएसजी रिपोर्ट के साथ आई यूएसजी (ultrasonography) रिपोर्ट के अनुसार उसको 7.3 एम.एम. का सबमूकोजल गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड था। साथ महिला को पिताशय एवं किडनी की पथरी की भी समस्या थी, परन्तु रोगी की मुख्या समस्या गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड ही था इसलिए पहले उसकी चिकित्सा की गई। रोगी के दोष निर्धारण के अनुसार तथा रोगी की समस्या के आधार पर वर्णित औषधियों का निर्धारण किया गया।

2. विमर्श

तालिका 1 आयुर्वेद में वर्णित ग्रंथि एवं अर्बुद के चिकित्सा सूत्र के अनुसार ही इस रोगी का औषधीय प्रबंधन किया गया जिसमें वात शामक, रक्तशोधक, लेखन, शोधन, दीपन और पाचन औषधियों का चयन किया गया। दीपन और पाचन औषधियां दोषों का

सारणी-1: रोगी का औषधीय प्रबंधन

द्रव्य	विधि	मात्रा	अनुपान
कांचनार गुग्गुल	भोजन के पश्चात	2 गोली दिन में 2 बार	उष्ण जल
वृद्धिवाटिका वटी	भोजन के पश्चात	1 गोली दिन में 2 बार	उष्ण जल
फाइब्रोनिल टैबलेट	भोजन के पश्चात	1 गोली दिन में 2 बार	उष्ण जल
आमपाचक वटी	भोजन के पूर्व	1 गोली दिन में 2 बार	उष्ण जल
कामदुधा रस	भोजन के पूर्व	1 गोली दिन में 2 बार	जल
वरुणशिग्रु क्वाथ	भोजन के पश्चात	20 मिली० ली० दिन में 2 बार	जल

पाचन कर रोग की संप्राप्ति को बढ़ने से रोकती है। इस महिला रोगी में दीपन और पाचन के लिए हमने आम पाचक वटी का प्रयोग किया। यह अग्नि की वृद्धि कर आम रूपी दोष का पाचन करती है तथा संप्राप्ति विघटन करती है। इसका प्रयोग शोथहर (anti-inflammatory) और पीड़ाहर (Analgesic) के रूप में भी होता है, क्योंकि इसकी उपस्थिति की वजह से यह वात शामक कर्म करता है और वात का शमन करके दर्द में लाभ पहुंचाता है। इसमे पिप्पली है जो दीपन करता है, नागकेसर है जो आम पाचन करता है ,कंकोल अग्नि दीपन और अनुलोमन एवं लवंग दीपन पाचक रूच्या अग्नि वर्धक गुण युक्त होता है।[6]

फाइब्रोनिल टैबलेट में हरिद्रा आदि अनेक द्रव्यों का योग है जो कि लेखन और शोधन का कार्य करती है। हरिद्रा*(Curcuma longa Linn)* लघु, रूक्ष गुण होने से लेखन कर्म करता है। लेखन कर्म (scraping agent) जो कि अपच मेद का पाचन करती है। हरिद्रा आम का पाचन कर मेद का लेखन, रक्त शोधन, वर्ण लेखन भी करता है।[7] तो यहां यह रोगी के लिए लाभदायक साबित हुआ। इसमें उपस्थित अन्य औषधियां भी लेखन, वात कफ के शमन का काम करती है।

कांचनार गुग्गुल में कांचनार *(Bauhinia variegate)*, मुख्यत लसिका तंत्र के संचालन का कार्य करता है। तथा लिंफेटिक ड्रेनेज (lymphatic drainage) को बढ़ाता है और शरीर को डिटॉक्सिफाई या शुद्ध करता है। कफ दोष को सम करता है शोथहर (anti-inflammatory) या किसी भी प्रकार की वृद्धि को शरीर में कम करता है। ऐसा शास्त्रों में वर्णित है और नई रिसर्च के द्वारा भी यह सामने आया कि सिस्ट, ग्रंथि, अल्सर आदि रोगों में अत्यधिक लाभकारी है और कषाय रस एवं शीत वीर्य होने से अत्यधिक रक्त प्रवाह (bleeding) को भी कांचनार कम करता है।[8] गूगल *(Commiphora mukul)* लघु, रूक्ष, सर, दीपन, अनुलोमन, लेखन, मेदोहर, कफ हर गुणों से युक्त होता है। शोथ एवं ग्रंथि रोगों में इसका प्रयोग बताया गया है। कुछ शोधों में पाया गया कि गूगल थायराइड ग्लैंड की क्रियाशीलता को भी परिवर्तित करता है।[9] इसीलिए कांचनार गुग्गुल को हम किसी भी प्रकार के सिस्ट में या गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड में प्रयोग करते हैं और इसका उपयोग निश्चित रूप से लाभकारी प्रभाव देता है।

वरुण शिग्रु क्वाथ की 20 ml की मात्रा भोजन से पूर्व जल के साथ लेने के लिए रोगी को दी गई। वरुण *(Crataeva nurvala)* तिक्त रुक्ष, उष्ण, कटु गुण युक्त होता है तथा इसका गुल्म, वृद्धि, अश्मरी में प्रयोग वर्णित है। साथ ही शिग्रु *(Moringa oleifera)* जो औषधि के रूप में सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध है तथा इसमें आयोडीन की प्रचुर मात्रा होती है। यह दीपन, पाचन एवं कफ, वात हर गुणों से युक्त है[10]। इसका प्रयोग आचार्यों ने गंडमाला रोग, वृद्धि, गुल्म में वर्णित किया है इसीलिए यहां पर वरुण शिग्रु रोगी के लिए श्रेष्ठ समझा गया।

कामदुधा रस जो रोगी को सेवन करवाया गया शास्त्रोक्त औषधि है जो मुख्यतः शमन का कार्य करती है। इस रोगी में अम्ल की समस्या होने के कारण इनको प्रयोग किया गया। यह शीतल एवं रक्त स्तंभन का कार्य करती है। इसमें उपस्थित प्रवाल, मुक्ता, मुक्ता शक्ति, भस्म दोष शमन का कार्य करती है तथा अग्नि वर्धन करती हैं। जो रोग की संपत्ति विघटन करने में सहायक है।[11]

3. परिणाम

अल्ट्रासोनोग्राफी एकमात्र नैदानिक उपकरण है जिसका उपयोग गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड के निदान की पुष्टि और प्रबंधन के परिणामों का आंकलन करने के लिए किया जाता है। इसीलिए इस केस में इसको अपनाया गया है। उपरोक्त महिला रोगी को प्रारंभ में 7.3 mm की गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड की समस्या थी। पांच माह के आयुर्वेदिक उपचार (ऊपर लिखे गए उपचार) के उपरान्त अल्ट्रासोनोग्राफी की सामान्य रिपोर्ट प्राप्त हुई तथा छह माह बाद फॉलोअप लेने पर भी रोग की पुनरावृत्ति नहीं हुई।

शोध कार्य की सीमाएं एवं भविष्य के अनुसन्धान निर्देश

यह शोध पत्र एक रोगी के आधार पर लिखा गया है, यदि इस तरह के शोध रोगियों के समूह पर किये जाए तो अनेक उत्साहजनक परिणाम मिलेंगे और जो समाज में ये धारणा है कि शल्य चिकित्सा एक मात्र चिकित्सा है, गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड की इस धारणा को भी बदला जा सकता है।

4. निष्कर्ष

गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड किसी भी उम्र की महिला के प्रजनन जीवन के दौरान देखा जाता है जिसके परिणामस्वरूप शारीरिक दोषों में गड़बड़ी के कारण कष्ट आर्तव, अत्यधिक रक्त स्राव और अनियमित मासिक धर्म जैसी समस्याएं हो सकती हैं। आयुर्वेदिक सिद्धांतों के आधार पर इस समस्या का समाधान संभव है। इस तरह के रोगियों में आयुर्वेदिक सिद्धांतों के अनुसार रक्तशोधक, लेखन, शोथहर और क्लेद नाशक औषधियों जैसे कांचनार गुग्गुल, वृद्धिवाधिका वटी, आम पाचक, फाइब्रोनिल जैसी अनेकों औषधियां फ़ाइब्रॉइड से राहत देने में बहुत प्रभावी पाई गई। गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड के रोगियों को आयुर्वेदिक औषधियों के सफल प्रबंधन से गर्भाशय फ़ाइब्रॉइड की सर्जरी से बचाने में योगदान करेगा।

संदर्भ

1. Moravek M.B., Bulun S.E., Endocrinology of uterine fibroids: steroid hormones, stem cell and genetic contribution, Curr Opin Obstet Gynecol.2015 Aug;27(4):276-283
2. El. Balat A., Dewilde, Schmeil I.et. al., Modern myoma treatment in the last 20 years: A review of the literature, BioMed research international,2018;4593875
3. Kamini Dhiman, Ayurvedic intervention in the management of uterine fibroids: A case series: AYU,2014;35(3);303-308
4. Acharya Shri Yadunandan, Madhav Nidanam, Chaukhamba publication;2013; chapter 38, pages 88-90
5. Ibrahim Abbas Awad, prevalence and incidence of uterine fibroid at King Abdulaziz university hospital Saudi Arabia, ResearchGate, Aug 2016; DOI:10.5923/j.cmd.20160603.01
6. Baban Rathod, Sachin Sheth, Vishakha Vivek Sonawane; Review on Tambulasava -Afermented Ayurvedic formulation Ayurlog national journal of Research in Ayurved Science; Nov 2020; vol 8th, issue; 6th
7. Bhavamishra, Bhavaprakasha, Bhavaprakasha Nighantu, Haritakyadi Varga, 197, edited by Brahmashankar Mishra, 11 th ed. Chaukhamba Sanskrit Sansthana, Varanasi, 2004; 114
8. Bhavamishra, Bhavaprakasha, Guduchyadi Varga, 103-104, edited by Brahmashankar Mishra, 11 th ed. Chaukhamba Sanskrit Sansthana, Varanasi, 2004; 336-7.
9. Tripathi YB, Malhotra OP, Tripathi SN. Thyroid stimulating action of Z-guggulsterone obtained from Commiphora mukul. Planta Med 1984;(1):78-80. 673957
10. Ibidem. Bhavaprakasha, Guduchyadi Varga, 107; 339.
11. Totawar, Vsasvi, Mukund Dive, and Sneha Kubde, A review study of the role of kamdudha ras mahastrotasa vyadhi;2020,6(7),258-261

सामग्रियों को जोड़ने की एक नई तकनीक - डिफ्यूज़न वेल्डिंग

संजय गोस्वामी

यमुना जी-13, ए.नगर, मुंबई-94

Email: goswamisanjay80@yahoo.in



सारांश

डिफ्यूज़न बॉन्डिंग का उपयोग आमतौर पर फेरस भागों के लिए किया जाता है जो आकार में काफी छोटे होते हैं। डिफ्यूज़न बॉन्डिंग, जिसे डिफ्यूज़न वेल्डिंग के रूप में भी जाना जाता है, एक ऐसी तकनीक है जिसका उपयोग आमतौर पर ठोस-अवस्था प्रसार के माध्यम से दो अलग-अलग धातुओं को जोड़ने के लिए धातु में किया जाता है। यह प्रक्रिया आमतौर पर सामग्रियों के पिघलने के तापमान के 50 - 70% अधिक पर की जाती है, इसके बाद उच्च दबाव का उपयोग किया जाता है। डिफ्यूज़न बॉन्डिंग का उपयोग आमतौर पर परमाणु और एयरोस्पेस जैसे उद्योगों में किया जाता है। यह विधि सदियों पुरानी है और शुरुआत में इसका उपयोग आभूषणों के लिए सोने और तांबे को जोड़ने के लिए किया जाता था। आधुनिक तकनीकों का वर्णन सोवियत वैज्ञानिक एन.एफ. कज़ाकोव द्वारा 1953 में किया गया था। प्रसार बंधन के पीछे का सिद्धांत उच्च सांद्रता वाले क्षेत्रों से कम सांद्रता वाले क्षेत्रों में परमाणुओं या अणुओं की गति पर आधारित है। इस प्रक्रिया को करने के लिए, सामग्रियों पर उच्च दबाव किया जाता है, जिन्हें फिर बॉन्डिंग की सुविधा के लिए हीट दिया जाता है और 1000-1200°C तक गर्म किया जाता है। सफल प्रसार बंधन प्रक्रिया के लिए यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि सामग्रियों की सतहें चिकनी और अशुद्धियों से मुक्त हों। गर्मी और दबाव को कई घंटों तक लागू किया जाता है, आमतौर पर हीटिंग के लिए भट्ठी या विद्युत प्रतिरोध और दबाव के लिए हाइड्रोलिक प्रेस का उपयोग किया जाता है। ऐसे में जहां मजबूत ऑक्साइड परतों वाली धातुओं को जोड़ा जा रहा है, ऑक्सीकरण को रोकने के लिए प्रक्रिया को वैक्यूम या अक्रिय गैस वातावरण में किया जाना चाहिए।डिफ्यूज़न वेल्डिंग, सामग्रियों को जोड़ने की एक अनोखी और नई तकनीक, 'डिफ्यूज़न वेल्डिंग' बहुत ही कम लागत पर और बिना किसी प्रदूषण की समस्या के विभिन्न गुणों और आकारों की सामग्रियों को जोड़ना संभव बनाती है।

1. प्रस्तावना

परीक्षण के आधार पर डिफ्यूज़न जोड़ अन्य तरीकों से बने जोड़ों की तुलना में हर तरह से बेहतर पाए गए हैं। जिस सतह को जोड़ा जाना है, उसे साफ और डीग्रीज किया जाना चाहिए, तथा अधिमानतः ऑक्साइड से मुक्त होना चाहिए, जो प्रसार में अवरोध का कार्य कर सकता है। इस विधि से जरकैलोय और स्टेनलेस स्टील के बीच बनाया गया जोड़, हमारे देश के परमाणु रिएक्टरों में व्यावहारिक रूप से उपयोगी हो रहा है। डिफ्यूज़न वेल्डिंग एक ऐसी विधि है जिसमें जुड़ने



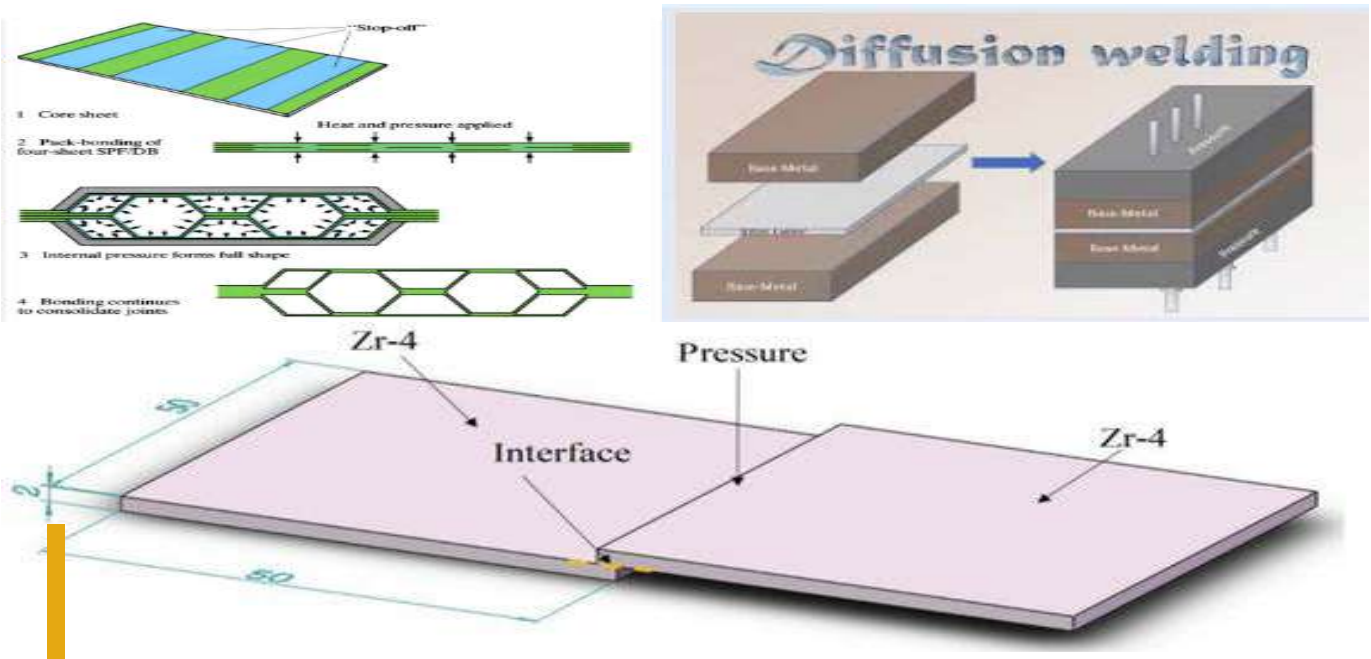


चित्र 1: प्रसार वेल्ड का ताप उपचार

वाली सामग्रियों को आवश्यक समय के लिए उच्च तापमान और उच्च दबाव पर रखा जाता है, जिससे संपर्क सतह पर प्रसार होता है और वेल्ड एक जोड़ बनता है। प्रसार जोड़ का निर्माण निर्वात में उच्च दबाव क्षेत्र में होता है। जोड़ी जाने वाली सामग्रियों की सतहों को 1-2 माइक्रोमीटर तक पॉलिश किया जाता है। फिट की गई सतहों को एक निर्वात कक्ष संपर्क में रखा जाता है। हाइड्रोलिक विधि द्वारा सामग्रियों पर दबाव डाला जाता है। संपर्क सतह पर रिक्त स्थानों को भरने और मजबूत बनाने के लिए पर्याप्त दबाव लगाया जाता है। भट्ठी का तापमान तेजी से तरल घटक के गलन बिंदु के 50 प्रतिशत से 70 प्रतिशत तक बढ़ जाता है। सामग्री को आवश्यक समय तक इस दबाव और तापमान पर रखा जाता है। इस समय के दौरान, संपर्क सतह पर पारस्परिक प्रसार होता है और एक जोड़ बनता है। प्रसार वेल्डिंग का उपयोग समान या असमान सामग्रियों को जोड़ने के लिए किया जा सकता है। इस विधि द्वारा सीमेंटेड कार्बाइड को किसी अन्य सीमेंटेड कार्बाइड या स्टील बेस से जोड़ा जा सकता है। बिखरे हुए कार्बाइड का प्रसार न होने के कारण सीमेंटेड कार्बाइड अपनी रासायनिक अवस्था को बनाए रखता है। इस विधि से, झरझरा सेरमेट की बड़ी वस्तुओं के निर्माण के लिए एक झरझरा सेरमेट को दूसरे झरझरा सेरमेट से या ठोस धातु के आधार से जोड़ना संभव है। विसरण जोड़ तीन विधियों से बनाए जा सकते हैं- (1) ठोस अवस्था विसरण जोड़ (2) परिवर्तनशील द्रव क्रिटिकल द्रव चरण जोड़ और (3) परिवर्तनशील द्रव-द्रव चरण जोड़।

2. विशिष्ट पदार्थों को जोड़ना

आधुनिक इंजीनियरिंग में पदार्थों को जोड़ने के लिए दो अलग-अलग विशिष्ट पदार्थों की आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता सामान्य क्षेत्रों से लेकर परमाणु और अंतरिक्ष जैसे उन्नत क्षेत्रों तक ही नहीं है बल्कि अन्य रासायनिक उद्योग में भी उपयोग की जाती है जहाँ संक्षारण होता है। उदाहरण के लिए, रसोई में स्टेनलेस स्टील के बर्तनों का उपयोग किया जाता है, जो साफ, संक्षारण प्रतिरोधी और पके हुए भोजन के प्रति गैर-प्रतिक्रियाशील होते हैं। लेकिन स्टेनलेस स्टील ऊष्मा का अच्छा संवाहक नहीं होने के कारण इसमें बहुत अधिक ईंधन की खपत होती है। ईंधन बचाने के लिए ऐसे स्टेनलेस स्टील के बर्तनों के तल पर ब्रेज़िंग द्वारा तांबे जैसे ऊष्मा चालक की एक परत लगाई जाती है। इसी प्रकार, परमाणु रिएक्टरों के कोर में न्यूट्रॉन गुणों को जानने के लिए के लिए जिंक मिश्र धातु का उपयोग किया जाता है। स्टेनलेस स्टील की तुलना में जिंक मिश्र धातु अधिक महंगी है। इसलिए, स्टेनलेस स्टील का उपयोग कोर के बाहर किया जाता है और जिंक मिश्र धातु को स्टेनलेस स्टील के साथ जोड़ने की आवश्यकता होती है। जोड़े जाने वाले पदार्थों के भौतिक, रासायनिक और यांत्रिक गुण पूरी तरह से अलग होते हैं। फ़्यूज़िबल वेल्डिंग विभिन्न गुणों वाली इन सामग्रियों को जोड़ने के लिए उपयुक्त नहीं होता है। ऐसी सामग्रियों की फ़्यूज़िबल वेल्डिंग करने पर, पिघलने वाले क्षेत्र में भंगुर धातु के जोड़ बन जाते हैं, जिससे जोड़ों की ताकत कम हो जाती है। इन सामग्रियों के थर्मल विस्तार के गुणांक में भारी अंतर और क्रिस्टलीय संरचना में अंतर के कारण जोड़ों में अवशिष्ट तनाव होता है, जिसके कारण ठंडा होने पर जोड़ों में दरारें पड़ने की संभावना होती है।



चित्र 2 : डिफ्यूजन बॉन्डिंग - जरकैलोय और स्टेनलेस स्टील के बीच जोड़

(स्रोत: https://weld.theweldings.com/2020/11/diffusion-welding-bonding-process.html)

फ़्यूज़िबल वेल्डिंग का उपयोग बहुत छोटे भिन्न गलनांक वाली सामग्रियों को जोड़ने के लिए भी नहीं किया जा सकता है। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए डिफ्यूजन वेल्डिंग नामक एक नई तकनीक विकसित की गई है।

3. परिवर्तनीय द्रव चरण वेल्ड प्रणाली

इस विधि का उपयोग उच्च तापमान वाली सामग्रियों को जोड़ने के लिए किया जाता है, जिसमें इंटरमेटेलिक्स और रिफ्रैक्टरी धातुएं शामिल हैं, जिन्हें ठोस अवस्था में जोड़ने के लिए अत्यधिक उच्च तापमान की आवश्यकता होती है। इसमें एक आंतरिक परत का उपयोग किया जाता है जो कम तापमान पर पिघलती है। जैसे-जैसे यह परत पिघलती है, यह उत्कृष्ट सतह संपर्क स्थापित करती है, दबाव के कारण अधिकांश तरल बाहर निकल जाता है, जिसके परिणामस्वरूप कम तापमान पर एक मजबूत वेल्ड जोड़ बनता है।

4. ठोस अवस्था प्रसार वेल्ड प्रणाली

इस प्रणाली में, दोनों पदार्थ ठोस अवस्था में मौजूद होते हैं। जब दो धातुओं के बीच प्रसार होता है, तो उनके रासायनिक गुणों के आधार पर एक ठोस प्रसार या अंतरधात्विक वेल्ड जोड़ बनता है। ये अंतरधात्विक वेल्ड जोड़ भंगुर होते हैं और प्रसार क्षेत्र के भीतर धारियों के रूप में दिखाई देते हैं, जो अंततः समग्र जोड़ को कमज़ोर कर देते हैं। चरण आरेख की जांच करके, उचित तापमान पर जुड़ने की प्रक्रिया का संचालन करके या उपयुक्त इंटरलेयर्स को नियोजित करके कुछ स्थितियों में इन अंतरधात्विक जोड़ों के निर्माण को रोकना संभव है। इन इंटरलेयर्स का चयन उनकी प्रसारशीलता और चरण आरेखों के विश्लेषण पर आधारित है। इसके अलावा, अन्य परिदृश्यों में भी मध्यवर्ती परतों का उपयोग आवश्यक है। उदाहरण के लिए, मानक दबाव का उपयोग करके उच्च तापमान वाले मिश्र धातुओं और टूल स्टील्स जैसी अत्यंत कठोर सामग्रियों की सतहों को समतल करना चुनौतीपूर्ण है। ऐसे मामलों में, सहज प्रसार परतों के साथ सतह के रिक्त स्थान को भरकर मजबूत संपर्क प्राप्त किया जा सकता है। यदि जुड़ने वाली दो सामग्रियों के तापीय विस्तार गुणांक में महत्वपूर्ण अंतर है, तो मध्यवर्ती तापीय विस्तार गुणांक वाली परत का उपयोग जोड़ों में अवशिष्ट तनाव को कम करने में मदद कर सकता है। ऐसे मामलों में जहां जुड़ने वाली सामग्रियों का पारस्परिक प्रसार संभव नहीं है, ऐसी सामग्री की परत का उपयोग किया जाता

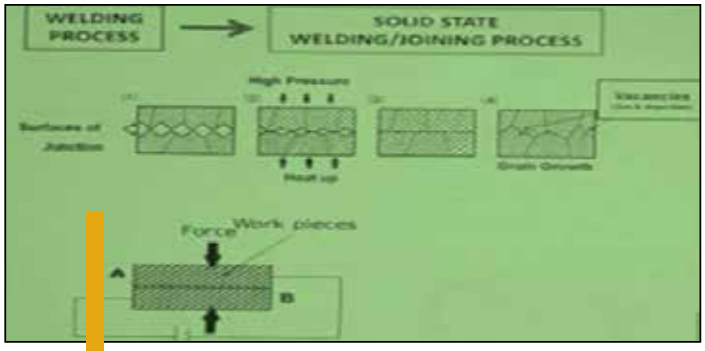


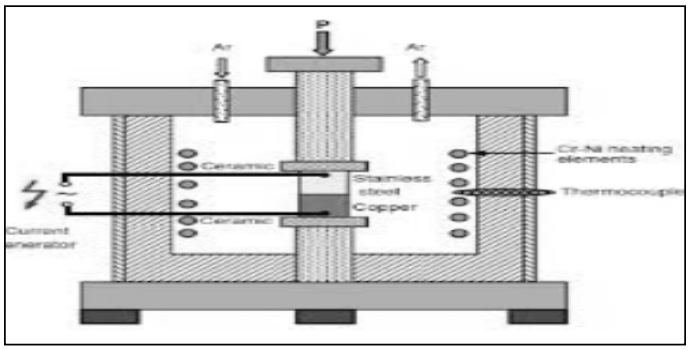




चित्र 3 : हीटिंग के लिए भट्ठी

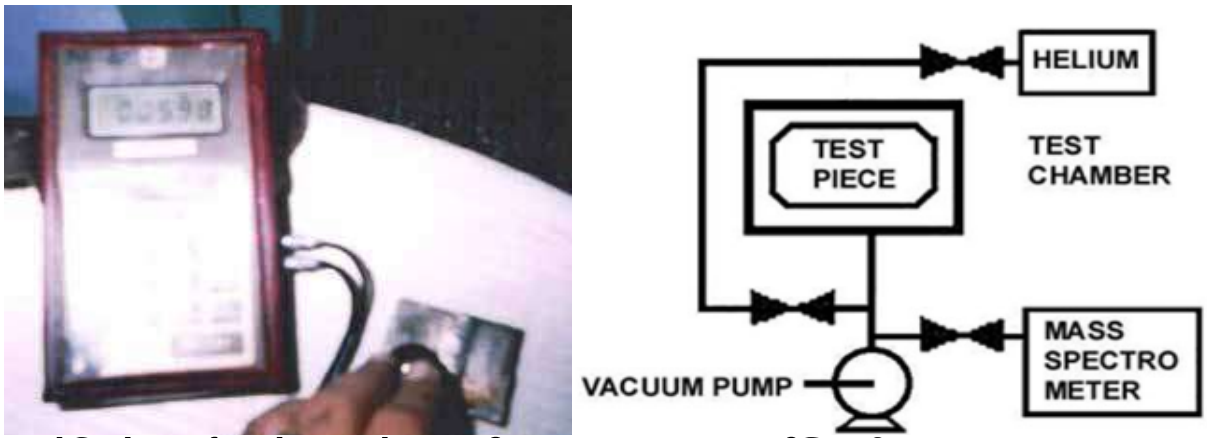
(स्रोत: https://blog.thepipingmart.com/other/fusion-vs-non-fusion-welding)





चित्र 4

(स्रोत: https://www.researchgate.net/figure/Schematic-Ilustration-of-difuse-welding-equipment)



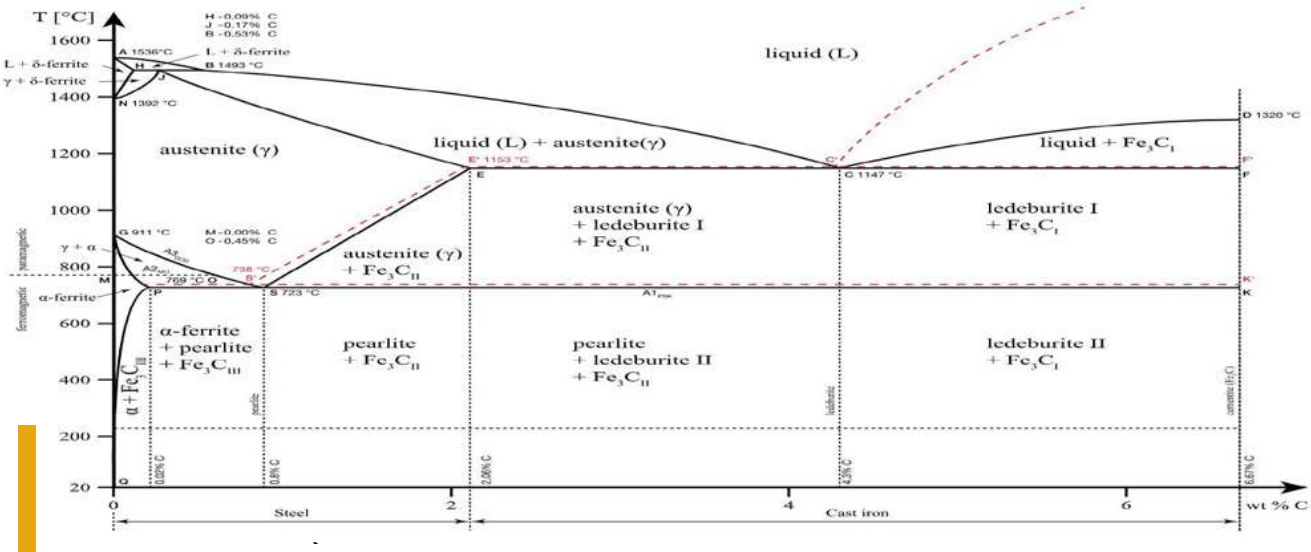
चित्र 5 : अल्ट्रासोनिक के अन्तर्गत नमूने फ्यूज़न वेल्ड का परीक्षण और हीलियम रिसाव

(स्रोत: https://www.wikipedia.org/)

है जो दोनों सामग्रियों में पारस्परिक प्रसार किया जा सकता है। इस प्रणाली में, सतह का पूर्व-उपचार आवश्यक है, और जुड़ने की प्रक्रिया सामान्य तापमान पर एक विस्तारित अवधि के लिए की जाती है।

5. गुणवत्ता नियंत्रण

वेल्डेबिलिटी में भिन्न भिन्न कारकों के कारण वेल्डिंग दोष होती है। वेल्ड के अंदरूनी हिस्सों में वेल्ड दोष, सरंध्रता, समावेशन, दरारें और रिक्तियों आदि का पता लगाने के लिए गैर-विनाशकारी परीक्षण किए जाते है। यह गुणवत्ता परीक्षण के लिए एक अच्छी तकनीक है। वेल्डिंग दोष सामान्यः वेल्डिंग डिज़ाइन का चयन, कौशल या मशीन सेट से लेकर गलत वेल्डिंग गति, सामग्री और वोल्टेज के कारण होता हैं। प्रसार वेल्ड जोड़ों की संरचनात्मक एकरूपता, दोष, रिसाव जो विभिन्न कोड पर आधारित है और यांत्रिक शक्ति की जाँच गुणवत्ता परीक्षण के लिए विनाशकारी परीक्षण किए जाते है। इन गुणों की जांच के लिए जोड़ों पर विभिन्न परीक्षण जैसे कि तनाव परीक्षण, मोड़ परीक्षण, चार्पी प्रभाव परीक्षण, पेलिनी ड्रॉप वजन परीक्षण, तन्यता परीक्षण, क्रश परीक्षण, दबाव और फ्रैक्चर परीक्षण किए जाते हैं। जोड़ों की जांच करने के लिए, क्रॉस सेक्शन को ऑप्टिकल माइक्रोस्कोप और स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप द्वारा देखा जाता है। जोड़ों और इंटरमेटालिक जोड़ों की सतह पर प्रसार की मात्रा को मापने के लिए ऐसी सतहों का अध्ययन इलेक्ट्रॉन जांच सूक्ष्मदर्शी विश्लेषक द्वारा किया जाता है। हीलियम रिसाव परीक्षण द्वारा जोड़ों की रिसाव जकड़न की जाँच की जाती है। जोड़ों से बनी नली को वायुहीन बनाया जाता है और उस पर हीलियम का छिड़काव किया जाता है। हीलियम रिसाव को मास स्पेक्ट्रोस्कोपी द्वारा मापा जाता है। जोड़ों की मजबूती निर्धारित करने के लिए नमूने बनाए जाते हैं। नमूना बनाते समय यह ध्यान रखा जाता है कि जोड़ नमूने की लंबाई के मध्य में हों। विस्तार जोड़ों को स्वचालित विधि द्वारा बनाया जा सकता है। विस्तार जोड़ों में दोषों की संख्या बहुत कम (0.01-0.001% तक) होती है। एक्स रे होता है और डिफेक्ट मालूम नहीं होता है, इसलिए उनकी जाँच सामान्य एक्स-रे या गामा किरण उपकरणों द्वारा नहीं की जा सकती है। इसके अलावा भवर धारा परीक्षण (ईटी), ध्वनिक उत्सर्जन परीक्षण (AE), थर्मल / इन्फ्रारेड टेस्टिंग (IR)टेस्ट, स्टेटिक टेस्ट, डायनामिक टेस्ट, इसलिए इनका परीक्षण अल्ट्रासोनिक तरंगों द्वारा से किया जाता है। जोड़ों की संरचनात्मक एकरूपता का परीक्षण अन्य गैर-विनाशकारी परीक्षण अल्ट्रासोनिक तरंगों,इन्फ्रारेड टेस्टिंग (IR), ध्वनिक उत्सर्जन परीक्षण (AE), इलेक्ट्रोमैग्नेटिक परीक्षण (ET), गाइडेड वेव टेस्टिंग (GW), ग्राउंड पेनेट्रेटिंग रडार (GPR), लेजर टेस्टिंग मेथड्स (LM), लीक टेस्टिंग (LT), मैग्नेटिक फ्लक्स लैजेज(MFL), माइक्रोवेव एनडीटी टेस्टिंग विधि द्वारा किया जा सकता है। परीक्षण में किसी सामग्री, उपकरण या निरीक्षण किए जाने वाले भाग को बिना



चित्र 6

(स्रोत: https://fractory.com/iron-carbon-phase-diagram/)

नुकसान पहुंचाए उसका गुणवत्ता नियंत्रण और निरीक्षण किया जाता है। तरल व्याप्ति परीक्षण (पीटी) और चुंबकीय कण परीक्षण सतह के ऊपर दोषों को जानने हेतु किया जाता है जबकि रेडियो ग्राफी और अल्ट्रसोनिक टेस्ट सामग्री के अंदरुनी दोषों को पता लगाने हेतु किए जाते हैं। जो गुणवत्ता मानकों ए.एस.टी.एम., आई.एस., ए.एस.एम.ई., डी. एन.कोड के अनुसार की जाती है।

6. निष्कर्ष

प्रसार वेल्डिंग का उपयोग जटिल संरचनाओं को जोड़ने के लिए किया जा सकता है, जिनमें एक साथ कई वेल्ड बनाने की आवश्यकता होती है। विघटन चरण को दो पदानुक्रमित उप-चरणों में विभाजित किया जा सकता है जिसमें भराव धातु के पिघलने के बाद तरल क्षेत्र का विस्तार होता है। चरण आरेख के अनुसार, तरल में संतुलन को सीएलα की सांद्रता को कम करने के लिए सुपरसैचुरेटेड तरल में परमाणुओं के विघटन द्वारा स्थापित किया जा सकता है। इस चरण के दौरान, तरल चरण का समरूपीकरण जारी रहता है और तरल क्षेत्र की चौड़ाई तब तक बढ़ जाती है जब तक कि तरल चरण में संरचना प्रोफ़ाइल समाप्त नहीं हो जाती, यानी तरल में प्रसार बंद नहीं हो जाता। इस समरूपीकरण की दर मुख्य रूप से तरल चरण में प्रसार गुणांक द्वारा नियंत्रित होती है और इसलिए, इस चरण को पूरा होने में थोड़ा समय लगता है। हालाँकि, यदि पिघलने की प्रक्रिया के अंतर-प्रसार के परिणामस्वरूप होती है, तो इंटरलेयर का पिघलना और तरल चरण का चौड़ा होना एक साथ हो सकता है। आधुनिक इंजीनियरिंग में सेमीकंडक्टर, फेराइट्स, ग्लास, सिरेमिक, ग्रेफाइट आदि सामग्रियों को धातुओं या मिश्र धातुओं के साथ जोड़ने की आवश्यकता होती है। इन सामग्रियों को प्रसार वेल्डिंग की विधि द्वारा सबसे अच्छा जोड़ा जा सकता है, फिर सेमीकंडक्टर चिप उद्योग और विनिर्माण उद्योग, डीआरडीओ, वेल्डिंग और परमाणु उद्योग में होता है। भारत में परमाणु ऊर्जा विभाग में शिल्डिंग कास्क में डिफ्यूजन वेल्डिंग का इस्तेमाल किया जाता है, जब लेड और स्टेनलेस स्टील को जोड़ा जाता है। डीआरडीओ में प्रसार बंधन एयरोस्पेस घटक सामग्री को जोड़ने व इसरो में राकेट लॉन्च वाले डिवाइस जिसमें दो अन्य धातु को जोड़ा जाता है। इन संस्थान में डिफ्यूजन वेल्डिंग किया जाता है, जिसके लिए प्राइवेट कंपनी जैसे डिफ्यूजन इंजीनियर्स लिमिटेड, मुंबई इसाब इंडिया लिमिटेड, चेन्नई व अन्य एनडीटी लैब (एनएबीएल लैब व आईएमएस प्रमाणित कंपनी) है। जहाँ वेल्डिंग का आटोमेटिव मशीन है। भारत में इसरो, डीआरडीओ, सीएसआईआर, इंडियन ऑयल, भारत

पेट्रोलियम डीएई आदि डिफ्यूजन वेल्डिंग का काम असमान जोड़ को जोड़ने के लिए कर रही है।

संदर्भ

1. P Indian Welding Journal (2022, April Issue), Indian Institute of Welding Kolkata.
2. Kazakov N.F(1985, English version), Diffusion Bonding of Materials', Pergamon Press.
3. Shirzadi A.A. and Wallach E.R (2004): A new method to diffusion bond superalloys, Science and Technology of Welding and Joining, Vol. 9, No. 1, pp 37-40'
4. Shirzadi A.A., Assadi H. and Wallach E.R. (2011): Interface evolution and bond strength when diffusion bonding materials with stable oxide films, Journal of Surface and Interface Analysis, Vol 31, No. 7, pp. 609-618.
5. Singer C., Holmyard E.J., Hall A.R. and Williams T.I. (1958), 'A History of Technology', Oxford University Press.
6. Technology Focus (2020), DRDO, New Delhi. (https://www.drdo.gov.in/drdo/technology-focus)

शोध प्रभाव और शोध की दृश्यता बढ़ाने के कुछ प्रभावी और बेहतर तरीके: एक अध्ययन

सारांश

वर्तमान में बढ़ती प्रतिस्पर्धा और प्रकाशित होने वाले शोध की लगातार बढ़ती मात्रा के साथ, अलग दिखना अधिक चुनौतीपूर्ण होता जा रहा है। शोधकर्ताओं का मूल्यांकन उनके प्रकाशनों के साथ-साथ उनके प्रकाशनों को मिलने वाले उद्धरणों के आधार पर किया जाता है। लगभग सभी शोधकर्ताओं की पहली प्राथमिकता एक उच्च रैंक वाली जर्नल में प्रकाशित करना होता है। उच्च रैंक वाले जर्नल में प्रकाशित करना ही काफी नहीं है। प्रकाशन के पश्चात, शोध के प्रभाव और शोध की दृश्यता भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हालाँकि, ऐसे कई तरीके हैं जिनका उपयोग शोधकर्ता अपने शोध की दृश्यता और प्रभाव को बेहतर बनाने के लिए कर सकते हैं। उच्च प्रभाव वाले जर्नल में प्रकाशन, सोशल मीडिया और अकादमिक नेटवर्किंग साइटों का उपयोग करना, प्रभावी और सूचनात्मक शीर्षक, सार और कीवर्ड बनाना और ओपन एक्सैस प्लेटफ़ॉर्म के माध्यम से व्यापक दर्शकों के लिए शोध को सुलभ कराना शोध के प्रभाव और शोध की दृश्यता बढ़ाने के कुछ प्रभावी और बेहतर तरीके हो सकते हैं। शोधकर्ता एक बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाकर शोध का प्रभाव, शोधकर्ता अपनी प्रतिष्ठा और दृश्यता बढ़ा सकते हैं। इस शोध पत्र में, शोध के तीन अलग-अलग चरणों जिसमें - योजना, संचालन और शोध लेखन प्रक्रिया चरण, प्रकाशन चरण, और प्रकाशन के बाद के चरण में शोध के प्रभाव और शोध की दृश्यता बढ़ाने के कुछ प्रभावी और बेहतर तरीकों का वर्णन किया गया है।

शब्द : शोध प्रभाव (Research impact), शोध आउटपुट (Research Output), उद्धरण (Citation), शोध दृश्यता (Research Visibility)

डॉ. नीरज चौरसिया

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

Email: neerajchaurasia.iit@gmail.com

1. परिचय

बढ़ती प्रतिस्पर्धा और प्रकाशित होने वाले शोध की लगातार बढ़ती मात्रा के साथ, भीड़ से अलग दिखना अधिक चुनौतीपूर्ण होता जा रहा है। हर साल 2.5 मिलियन से ज़्यादा वैज्ञानिक शोध पत्र प्रकाशित होते हैं और यह संख्या बढ़ती जा रही है। इसलिए शोधकर्ताओं के लिए अपने शोध-उत्पादन को अलग दिखाने के तरीके खोजना बहुत ज़रूरी है। शोध की दृश्यता और प्रभाव में



चित्र 1

(स्रोत: https://www.linkedin.com/pulse/how-improve-research-visibility-impact-nader-ale-ebrahim-2e/)

सुधार करना शोधकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे उन्हें व्यापक दर्शकों तक पहुँचने और अपने क्षेत्र पर अधिक प्रभाव डालने में मदद मिलती है। हालाँकि, ऐसे कई तरीके हैं जिनका उपयोग शोधकर्ता अपने शोध की दृश्यता और प्रभाव को बेहतर बनाने के लिए कर सकते हैं। शोध की दृश्यता में सुधार करने के सबसे प्रभावी तरीकों में से एक उच्च प्रभाव वाले जर्नल (High impact factor journal) में प्रकाशित करना है। शोधकर्ताओं को अपने शोध कार्य को उन जर्नल्स में प्रकाशित करने का लक्ष्य रखना चाहिए जो उनके क्षेत्र में अत्यधिक प्रतिष्ठित हैं और जिनके पाठक व्यापक हैं। इससे न केवल उनके शोध की दृश्यता बढ़ेगी बल्कि एक शोधकर्ता के रूप में उनकी प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। उच्च रैंक वाली जर्नल में प्रकाशित करना ही काफी नहीं है। प्रकाशन के पश्चात, शोध के प्रभाव और शोध की दृश्यता भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। शोधकर्ता अपने शोध कार्य को बढ़ावा देने और अपने दर्शकों से जुड़ने के लिए सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म का उपयोग कर सकते हैं। सोशल मीडिया पर अपने शोध निष्कर्षों को साझा करके, शोधकर्ता व्यापक दर्शकों तक पहुँच सकते हैं और अपने शोध कार्य की दृश्यता बढ़ा सकते हैं। अन्य शोधकर्ताओं के साथ सहकार्यता(collaboration) करके शोध की दृश्यता और प्रभाव को बेहतर बनाया जा सकता है। अन्य शोधकर्ताओं के साथ सहकार्यता करके, शोधकर्ता नए नेटवर्क का उपयोग कर सकते हैं जिससे न केवल शोध के दायरे का विस्तार करने में मदद मिलेगी, बल्कि उनके शोध कार्य की दृश्यता भी बढ़ेगी। शोध दृश्यता और प्रभाव को बढ़ावा देने से संबंधित गतिविधियाँ शोध प्रक्रिया के सभी चरणों में होती हैं, जो खोज चरण से शुरू होकर विश्लेषण और शोध पत्रन प्रक्रिया, प्रकाशन और मूल्यांकन तक होती हैं। इस शोध पत्र में, शोध के तीन अलग-अलग चरणों जिसमें - योजना, संचालन और शोध लेखन प्रक्रिया चरण (Planning, Conduction and Writing Process Stage), प्रकाशन चरण (Publishing Stage) और प्रकाशन के बाद का चरण (Post Publication Stage) शामिल हैं, में शोध के प्रभाव और शोध की दृश्यता बढ़ाने के कुछ प्रभावी और बेहतर तरीकों का अध्ययन करेंगे।

2. शोध प्रभाव और शोध की दृश्यता क्या है ?

शोध प्रभाव (Research Impact) वह प्रत्यक्ष योगदान है जो उत्कृष्ट शोध समाज और अर्थव्यवस्था में करता है। प्रभाव में वे सभी अत्यंत विविध तरीके शामिल हैं जिनसे शोध-संबंधी ज्ञान और कौशल व्यक्तियों, संगठनों और राष्ट्रों को लाभ पहुँचाते हैं, जिसमें शैक्षणिक, आर्थिक और सामाजिक प्रभाव शामिल हैं (Research Council, UK)।

शोध दृश्यता (Research Visibility) से तात्पर्य है कि शोधकर्ता का शोध कार्य अकादमिक जगत के अंदर और बाहर, कितना सुलभ और व्यापक रूप से जाना



चित्र 2

(स्रोत: https://www.linkedin.com/pulse/how-improve-research-visibility-impact-nader-ale-ebrahim-2e/)

जाता है। यह शोधकर्ताओं को उनके इच्छित दर्शकों तक पहुँचने, उनके सहयोग नेटवर्क को बढ़ाने और संभावित रूप से उनके अकादमिक प्रभाव को बढ़ाने में मदद कर सकता है।

3. शोध प्रभाव को मापने की आवश्यकता (Need of Measuring Research Impact)

शोध की दुनिया में शोध प्रभाव एक महत्वपूर्ण विषय है। वित्तपोषक, संस्थान और शोधकर्ता सभी शोध की गुणवत्ता और प्रभाव का आंकलन करने में रुचि रखते हैं। शोध प्रभाव को मापने से शोधकर्ताओं को यह समझने में मदद मिल सकती है कि उनका शोध कार्य उनके विषय क्षेत्र, और उनके आस-पास की दुनिया को कैसे प्रभावित करता है। शोध प्रभाव को मापने की आवश्यकता के कुछ कारण निम्नानुसार हैं :

- पदोन्नति या कार्यकाल विस्तार के लिए आवेदन को मज़बूत बनाने के लिए।
- अनुदान नवीकरण और प्रगति रिपोर्ट के लिए अनुसंधान निवेश पर प्रतिफल का परिमाणन करना।
- शोध के महत्व को दर्शाकर भविष्य में वित्त पोषण की संभावना बढ़ाने के लिए।
- यह पता लगाने के लिए कि आपके शोध कार्य को कौन उपयोग कर रहा है और क्या इसे उचित रूप से श्रेय दिया गया है या उद्धरित किया जा रहा है।
- स्वयं को, शोध समूह को, विभाग या संस्थान को बेंचमार्क करने के लिए।
- अपनी व्यक्तिगत या सामूहिक उत्पादकता दिखाने के लिए।
- सहयोगियों के अपने नेटवर्क को दिखाने के लिए।

4. शोध प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में शोध दृश्यता और प्रभाव बढ़ाने के कुछ प्रभावी और बेहतर तरीके

शोध दृश्यता और प्रभाव को बढ़ावा देने से संबंधित गतिविधियाँ शोध प्रक्रिया के सभी चरणों में होती हैं, जो खोज चरण से शुरू होकर विश्लेषण और शोध पत्रन प्रक्रिया, प्रकाशन और मूल्यांकन तक होती हैं। शोध पत्रन प्रक्रिया के दौरान, ऐसी तकनीकें और तरीके हैं जिनका उपयोग करके प्रकाशन के पश्चात शोध कार्य की दृश्यता बढ़ाई जा सकती है। इस शोध पत्र में, शोध के प्रभाव और दृश्यता को शोध के तीन अलग-अलग चरणों में विस्तारित करने का प्रयास किया जा रहा है :

4.1 योजना, संचालन और शोध लेखन प्रक्रिया चरण (Planning, Conduction and Writing Process Stage)
4.2 प्रकाशन चरण (Publishing Stage)
4.3 प्रकाशन के बाद का चरण (Post Publication Stage)

4.1 योजना, संचालन और शोध पत्र लेखन प्रक्रिया चरण (Planning, Conduction and Writing Process Stage)

योजना, संचालन और शोध पत्रन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में शोध दृश्यता और प्रभाव में सुधार किया जा सकता है, जिसमें शोध योजना के दौरान शोध के लक्ष्यों, लक्षित दर्शकों और प्रसार रणनीति की पहचान करना; संचालन के अंतर्गत डेटा एकत्र करना, निष्कर्षों का विश्लेषण करना और निष्कर्ष निकालना; शोध पत्रन के अंतर्गत शोध के निष्कर्षों, विधियों और निष्कर्षों को स्पष्ट रूप से संप्रेषित करना; शोध विषय के लिए प्रासंगिक और उच्च प्रभाव कारक (impact factor) वाले जर्नल का चयन करना; शोध को प्रस्तुत करने और समीक्षा के लिए जर्नल के निर्देशों का पालन करना, कराना आदि शामिल हैं। शोध पत्र लेखन प्रक्रिया के दौरान, ऐसे कई तरीके हैं जिनका उपयोग दृश्यता बढ़ाने के लिए कर सकते हैं, एक बार प्रकाशित होने के बाद, जो आपके शोध प्रभाव को बढ़ाने में मदद करती हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

4.1.1 सही जर्नल का चयन (Choosing the Right Journal)

शोध प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण चरणों में से एक प्रकाशन के लिए सही जर्नल का चयन करना है। सही जर्नल का चयन आपके शोध की दृश्यता और प्रभाव पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है। जर्नल का चयन करते समय यह सुनिश्चित करें कि आपके द्वारा चुना गया जर्नल आपके शोध के विषय को कवर करता है। यह कार्य जर्नल की वेबसाइट देखकर और उसका मिशन स्टेटमेंट और स्कोप पढ़ कर किया जा सकता है। किसी जर्नल का प्रभाव कारक (impact factor) अकादमिक समुदाय में उसके प्रभाव का एक माप है। आम तौर पर, प्रभाव कारक जितना अधिक होता है, जर्नल उतनी ही प्रतिष्ठित होती है। हालाँकि, यह

ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि जर्नल का चयन करते समय प्रभाव कारक ही एकमात्र कारक नहीं माना जाना चाहिए। जर्नल की प्रकाशन आवृत्ति पर विचार करना आवश्यक है। यदि आप चाहते हैं कि आपका शोध जल्दी प्रकाशित हो, तो ऐसी जर्नल चुनें जो अक्सर प्रकाशित होती हो। ओपन एक्सेस जर्नल आपके शोध को व्यापक पाठकों तक पहुंचाने का कार्य करते हैं, लेकिन इसके लिए प्रकाशन शुल्क(APC) का भुगतान करना पड़ सकता है। ऐसा देखा जाता है कि ओपन एक्सेस प्रकाशनों के उद्धरणों की संख्या अधिक होती है। पीयर रिव्यू प्रोसेस एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। एक मजबूत और पारदर्शी पीयर रिव्यू प्रोसेस शोध की विश्वसनीयता बढ़ा सकती है। अपना शोध उन जर्नल में प्रकाशित करें जो स्कोपस, वेब ऑफ साइंस, जैसे डेटाबेसों में अनुकृमित किया गए हों और आपके विषय के अधिकांश शोधकर्ता पढ़ते हों।

कुल मिलाकर, यह महत्वपूर्ण है कि सावधानीपूर्वक विचार करें कि आपको अपना शोध किस जर्नल में प्रस्तुत करना है। सही जर्नल चुनने से आपके शोध की दृश्यता और प्रभाव बढ़ सकता है, और अंततः आपको अपने शैक्षणिक और व्यावसायिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद मिल सकती है।

4.1.2 प्रभावी सार लिखना
(Writing an Effective Abstract)

सार, एक शोध पत्र, समीक्षा, सम्मेलन की कार्यवाही या किसी विशेष विषय के गहन विश्लेषण का संक्षिप्त सारांश होता है और इसका उपयोग अक्सर पाठक को शोध पत्र के उद्देश्य को जल्दी से समझने में मदद करने के लिए किया जाता है। अपने शोध की दृश्यता और प्रभाव को बढ़ाने के लिए एक प्रभावी सार लिखना महत्वपूर्ण है। सार संक्षिप्त और सटीक होना चाहिए। सार को आपके शोध कार्य के सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर केंद्रित होना चाहिए। साथ ही उन मुख्य बिंदुओं को हाइलाइट करें जिन्हें आप चाहते हैं कि आपके पाठक आपके शोध पत्र से समझें। सार में आपके शोध के लिए कुछ संदर्भ प्रदान करना चाहिए। बताएं कि आपका शोध क्यों महत्वपूर्ण है। इस प्रकार का पालन करके, आप एक ऐसा सार लिख सकते हैं जो आपके शोध को प्रभावी ढंग से सारांशित करता है और पाठकों को आपके काम के बारे में अधिक जानने के लिए प्रोत्साहित करता है। एक प्रभावी सार आपके शोध की दृश्यता और प्रभाव को बढ़ाने में मदद कर सकता है।

4.1.3 एक सशक्त शीर्षक बनाना
(Creating a Strong Title)

एक सशक्त शीर्षक बनाना, शोधकर्ताओं द्वारा अपने काम की दृश्यता और प्रभाव को बेहतर बनाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण तरीकों में से एक है। शोध पत्र का शीर्षक अक्सर पहला बिन्दु होता है जिसे संभावित पाठक देखता है, और यह निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है कि वे आगे पढ़ना चाहते हैं या नहीं। शीर्षक बनाते समय, यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि यह स्पष्ट, संक्षिप्त और वर्णनात्मक होना चाहिए। एक अच्छे शीर्षक से पाठकों को यह पता चलना चाहिए कि शोध पत्र किस बारे में है, साथ ही यह ध्यान आकर्षित करने वाला और याद रखने योग्य भी होना चाहिए। शीर्षक में शोध पत्र के विषय से संबंधित कीवर्ड का उपयोग किया जाए। इससे यह सुनिश्चित करने में मदद मिल सकती है कि शीर्षक खोज इंजन और अन्य माध्यमों द्वारा आसानी से खोजा जा सके, जिनका उपयोग शोधकर्ता प्रासंगिक साहित्य खोजने के लिए कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, विशिष्ट, वर्णनात्मक भाषा का उपयोग शीर्षक को अधिक आकर्षक और यादगार बनाने में मदद कर सकता है। कुल मिलाकर, शोध कार्य की दृश्यता और प्रभाव को बेहतर बनाने के लिए एक मजबूत शीर्षक बनाना एक अनिवार्य हिस्सा है। एक स्पष्ट, संक्षिप्त और वर्णनात्मक शीर्षक को सावधानीपूर्वक तैयार करने में समय लगाकर, शोधकर्ता यह सुनिश्चित करने में मदद कर सकते हैं कि उनका काम संभावित पाठकों के लिए खोज योग्य, आकर्षक और यादगार हो।

4.1.4 कीवर्ड अनुकूलित करना
(Optimizing Keywords)

शोध की दृश्यता और प्रभाव को बेहतर बनाने के सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक यह सुनिश्चित करना है कि आपका काम खोज इंजनों द्वारा खोजा जा सके। इसका मतलब है कि अपने शोध की सामग्री को सटीक रूप से दर्शाने के लिए अपने कीवर्ड को अनुकूलित करना आवश्यक है। अपने शीर्षक व सार में कीवर्ड शामिल करें तथा कीवर्ड के समानार्थी शब्दों

का प्रयोग करें। कीवर्ड के समानार्थी शब्दों को शामिल करने से सर्च इंजन रैंकिंग में सुधार करने में मदद मिल सकती है और इस संभावना को बढ़ाया जा सकता है कि आपका शोध संभावित पाठकों द्वारा खोजा जाएगा जो अलग शब्दावली का उपयोग करते हैं।

कीवर्ड चुनते समय, उन शब्दों और वाक्यांशों के बारे में सोचना ज़रूरी है जिनका इस्तेमाल लोग आपके विषय क्षेत्र में शोध खोजते समय कर सकते हैं। इसमें तकनीकी शब्द, संक्षिप्त शब्द और आम वाक्यांश शामिल हो सकते हैं। यह भी महत्वपूर्ण है कि आप उस संदर्भ पर विचार करें जिसमें आपका शोध स्थित है, जिसमें विशिष्ट विषय, कार्यप्रणाली और निष्कर्ष शामिल हैं। अपने कीवर्ड को अनुकूलित करने के लिए इन रणनीतियों का पालन करके, आप अपने शोध की दृश्यता और प्रभाव में सुधार कर सकते हैं, जिससे आपके क्षेत्र के आपके साथियों और अन्य शोधकर्ताओं द्वारा इसे खोजे जाने और उद्धृत किए जाने की संभावना बढ़ जाएगी।

4.1.5 प्रीप्रिंट (Preprint)

प्रीप्रिंट, जिसे शोध पत्रक की मूल पांडुलिपि (Original Manuscript of Research Paper-AOM) के रूप में भी जाना जाता है, आपके शोध पत्र का वह संस्करण है जिसे आपने पीयर रिव्यू के लिए जर्नल में प्रस्तुत करने से पहले तैयार किया है। अपने शोध कार्य को प्रीप्रिंट सर्वर या ओपन-एक्सेस रिपॉजिटरी, या संस्थागत रिपॉजिटरी, या ओपन आर्काइव पर साझा करना दृश्यता जल्दी प्राप्त करने का एक अच्छा तरीका है। इससे संभावित पाठकों और सहयोगियों को आकर्षित किया जा सकता है।

4.1.6 रिसर्च डेटा साझा करना (Sharing of Research Data)

रिसर्च डेटा को डेटा रिपॉजिटरी में साझा करके उद्धरण जल्दी प्राप्त किया जा सकते हैं। शोधकर्ता अपने शोध परिणामों और डेटा को व्यापक पहुंच के लिए प्रासंगिक विषयगत, संस्थागत और राष्ट्रीय रिपॉजिटरी में संग्रहित कर सकते हैं। डेटा रिपॉजिटरी प्रत्येक ऑब्जेक्ट को DoI प्रदान करती है जो उद्धरण (Citation) व एल्मेट्रिक स्कोर रिपोर्ट करने मे सहायता प्रदान करता है। रिसर्च डेटा साझा करना सकारात्मक रूप से बढ़े हुए उद्धरणों से जुड़ा हुआ है

4.2 प्रकाशन चरण (Publishing Stage)

शोध पत्र लेखन के पश्चात प्रकाशन प्रक्रिया के दौरान, ऐसे कई तरीके हैं जिनका उपयोग आप अपने शोध पत्र की दृश्यता बढ़ाने के लिए कर सकते हैं, एक बार प्रकाशित होने के बाद, जो आपके शोध प्रभाव को बढ़ाने में मदद करती हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

4.2.1 ओपन एक्सेस प्रकाशन (Open Access Publishing)

ओपन एक्सेस, शोध प्रकाशनों को स्वतंत्र रूप से सुलभ बनाने को संदर्भित करता है। शोधकर्ता ओपन एक्सेस जर्नल/प्लेटफ़ॉर्म में प्रकाशित करके अपने शोध कार्य को सभी को आसानी से उपलब्ध करा सकते हैं। यह देखा गया है कि ओपन एक्सेस जर्नल/प्लेटफ़ॉर्म को गैर-ओपन एक्सेस की तुलना में अधिक उद्धृत(cite) किया जाता है। ओपन एक्सेस प्रकाशन दुनिया भर के शोधकर्ताओं के लिए अधिक सुलभ होते हैं जिससे शोध के प्रभाव और पाठकों की संख्या को बढ़ाया जा सकता है। चूंकि, ओपन रिसर्च दुनिया भर में किसी के लिए भी, किसी भी समय उपलब्ध है इसलिए शोध की दृश्यता में मदद मिलेगी तथा उद्धरणों की संख्या में वृद्धि होगी। ये दोनों ही शोधकर्ता के करियर और फंडिंग की संभावनाओं में मदद कर सकते हैं।

4.2.2 लेखक संबद्धता (Author Affiliation)

लेखक संबद्धता (Author Affiliation) एक अति महत्वपूर्ण कदम है इसे सही तरह से दर्शाना अति आवश्यक है। लेखक संबद्धता को गलत तरीके से दर्शाने से इंडेक्सिंग डेटाबेस को आपके शोध कार्य को आपके नाम से जोड़ने में बाधा आ सकती है, जिससे संभावित रूप से उद्धरण लिंकिंग(citation linking) और गिनती(counting) पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। शोधकर्ताओं को एक मानकीकृत संस्थागत संबद्धता और पता प्रयोग में लाना चाहिए कोई संक्षिप्तीकरण का उपयोग नहीं करना चाहिए। उन्हें अपने विश्वविद्यालय/संस्था का पूरा नाम शामिल करना चाहिए। पता शामिल करते समय, विश्वविद्यालय/संस्था का नाम शामिल किया जाना चाहिए। यदि शोधकर्ता के पास कई संबद्धताएँ हैं, तो

प्रत्येक संबद्धता को अलग से स्पष्ट रूप से लेबल करके प्राथमिक संबद्धता को सूचीबद्ध करना आवश्यक है ताकि संभावित रूप से उद्धरण लिंकिंग और आपके शोध कार्य को आपके नाम से जोड़ना आसान हो जाएगा।

4.2.3 स्थायी पहचानकर्ता (Persistent Identifiers -PID)

स्थायी पहचानकर्ता (PID) अद्वितीय संदर्भ हैं जो शोधकर्ताओं, अनुसंधान, संस्थानों और डिजिटल ऑब्जेक्ट्स जैसे कि सॉफ़्टवेयर और डेटासेट की पहचान करने में मदद करते हैं। यह पता लगाने की क्षमता सुनिश्चित करता है कि डिजिटल ऑब्जेक्ट्स को समय के साथ आसानी से खोजा और एक्सेस किया जा सकता है और शोधकर्ताओं और संस्थानों को विशिष्ट रूप से पहचाना जा सकता है और समान नाम वाले अन्य लोगों के साथ भ्रमित नहीं किया जा सकता है। वर्तमान में ओपन PID के तीन मुख्य प्रकार के PID उपयोग करता हैं: शोध के लिए DOI, शोधकर्ताओं के लिए ORCID और संस्थानों के लिए ROR. आपका शोध कार्य आसानी से पहचानने व शोध प्रोफ़ाइल से जोड़ने के लिए स्थायी पहचानकर्ता का उपयोग किया जाता है। इसमें आमतौर पर अल्फ़ान्यूमेरिक स्ट्रिंग्स होते हैं। इसका उद्देश्य अलग-अलग संस्थाओं को पहचानना और उनका पता लगाना है। उदाहरण के लिए: पुस्तकों के लिए ISBN नंबर; जर्नल लेखों के लिए DOIs.

5. प्रकाशन के बाद का चरण (Post Publication Stage)

शोध पत्र प्रकाशन के पश्चात, ऐसे कई तरीके हैं जिनका उपयोग आप अपने शोध पत्र के अधिकतम प्रभाव और दृश्यता पाने के लिए कर सकते हैं, उनमे से कुछ निम्नानुसार हैं -

5.1 शोध के प्रभाव को मापना और दृश्यता को बढ़ाना (Measuring the Impact and Maximizing the Visibility)

शोध के प्रभाव और दृश्यता को मापने और व्यापक बनाने के लिए शोधकर्ताओं को हमेशा अपनी उपस्थिति ऑनलाइन बनाने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि इससे शोध की दृश्यता और पहुंच बढ़ाने में मदद मिलती है। प्रकाशनों को उद्धृत(cite) किए जाने की संभावना बढ़ाने और प्रकाशनों को खोजे जाने, पढ़े जाने, शोध सहयोग की संभावना बढ़ाने के लिए, उद्धरण का पता लगाने के लिए और साथ ही एल्मेट्रिक स्कोर बढ़ाने के लिए ऑनलाइन उपस्थिति बनान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। शोध के प्रभाव और दृश्यता को मापन और व्यापक बनाने के लिए निम्न माध्यमों का उपयोग सहायक हो सकता है :

5.1.1 प्री-प्रिंट या प्रकाशित शोध पत्र को स्वयं संग्रहित करना (Self-archiving a Pre-print or Published Research Paper)

शोध पत्र प्रकाशन के पश्चात इसे अपने व्यक्तिगत या संस्थागत वेब पेजों पर प्रकाशित करना उद्धरण (citation) और दृश्यता बढ़ाने का एक आसान कदम हो सकता है। सुनिश्चित करें कि यह कदम प्रकाशक के साथ आपके समझौते का उल्लंघन न हो। अपने शोध कार्यों को यथासंभव अधिक से अधिक ओपन एक्सेस रिपॉजिटरी में अपलोड करके, स्व-संग्रह करके, अपने शोध पत्र को मुफ़्त में उपलब्ध कराकर बड़ी संख्या में शोधकर्ताओं के लिए सुलभ बनाया जा सकता है। अर्थात आपका शोध पत्र केवल जर्नल और अन्य रिपॉजिटरी द्वारा एक्सेस किया जा सकता है, बल्कि इसे सरल गूगल सर्च द्वारा आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

5.1.2 वेब और सोशल मीडिया पर उपस्थिति को अधिकतम करना (Maximizing presence on Social Media)

शोधकर्ताओं के लिए अपनी दृश्यता और प्रभाव को बेहतर बनाने के लिए सोशल मीडिया एक शक्तिशाली माध्यम है। अपनी पहचान स्थापित करने के लिए विभिन्न प्लेटफार्मों पर अपनी प्रोफाइल बनाना और इनपर शोध रुचियों व विशेषज्ञता का सटीक रूप से दर्शाता आवश्यक है। एकेडेमिया, मेंडले, रिसर्चगेट, एक्स, लिंक्डइन, फेसबुक, यूट्यूब आदि जैसे सोशल मीडिया पर मजबूत उपस्थिति बनाकर, शोधकर्ता अपने साथियों व व्यापक शोधकर्ताओं से जुड़ सकते हैं और अपने शोध कार्य को बढ़ावा दे सकते हैं। सभी ऑनलाइन प्रोफ़ाइलो को नियमित रूप से अपडेट करना चाहिए।

अपनी सोशल मीडिया उपस्थिति को अधिकतम करने के लिए, अपने फ़ॉलोअर्स और साथियों के साथ



चित्र 3

जुड़ना भी महत्वपूर्ण है। शोध निष्कर्षों को साझा करना, टिप्पणियों और संदेशों का जवाब देना, अन्य शोधकर्ताओं से प्रासंगिक सामग्री साझा करना और प्रासंगिक बातचीत और हैशटैग में भाग लेना शामिल है। शोधकर्ता अपने शोध पर केंद्रित ब्लॉग या पॉडकास्ट बनाकर जनता से जुड़ सकते हैं। यह शोध निष्कर्षों को सुलभ और आकर्षक तरीके से साझा करने और इच्छुक पाठकों या श्रोताओं का एक समूह बनाने का एक शानदार तरीका है। सोशल मीडिया और अन्य ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म पर शोध साझा करने से दृश्यता और प्रभाव बढ़ सकता है, और अधिक ऑनलाइन उद्धरण और उल्लेख हो सकते हैं।

5.1.3 सर्च इंजन ऑप्टिमाइज़ेशन (SEO)

सर्च इंजन ऑप्टिमाइज़ेशन (SEO) क्रियाओं का एक सेट है, इसलिए जब कोई आपके शोध पत्र की सामग्री से संबंधित कुछ खोजता है, तो गूगल जैसे सर्च इंजन आपके शोध पत्र को उच्च रैंकिंग (पृष्ठों) पर दिखाते हैं इसलिए गूगल इंडेक्सिंग को गंभीरता से लेना आवश्यक है। यह बहुत महत्वपूर्ण है कि गूगल आपके शोध पत्र को विभिन्न वेब पेजों पर इंडेक्स करे। जितना हो सके सोशल मीडिया, संस्थागत वेबसाइटों और नेटवर्किंग पर अपने शोध पत्र के लिए लिंक बनाएँ। इसे "बैकलिंक्स क्रिएशन" कहा जाता है। आपके शोध पत्र के जितने ज़्यादा लिंक होंगे, गूगल जैसे सर्च इंजन आपके शोध पत्र को उतनी ही ज़्यादा रैंक देंगे। इसका मतलब है कि आपके प्रकाशनों के लिए ज़्यादा कनेक्शन लिंक बनाने से उन्हें सर्च इंजन पर ज़्यादा दृश्यमान और खोजे जाने योग्य बनाने में मदद मिलेगी।

5.1.4 शोधपत्रों के लिए वीडियो सार बनाकर साझा करना

वीडियो सार शोधकर्ताओं को रिसर्च विज़ुअलाइज़ेशन के माध्यम से आपके शोध निष्कर्षों को अधिक आसानी से समझने में मदद करता है। आप अपना वीडियो सार बनाकर उसे यूट्यूब या अन्य वीडियो-आधारित रिपॉजिटरी में जमा/साझा कर सकते हैं। विले द्वारा प्रकाशित शोध के अनुसार, वीडियो सार वाले शोधपत्रों को विले ऑनलाइन लाइब्रेरी पर 447% अधिक ऑल्टमेट्रिक स्कोर और 111% अधिक व्यूज़ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार जिनका शोधपत्रों के लिए वीडियो सार बनाकर साझा करके आप अपने शोध पत्र के अधिकतम प्रभाव और दृश्यता पाने के लिए उपयोग कर सकते हैं।

5.1.5 साथियों और सहकर्मियों के साथ नेटवर्किंग (Networking with Peers and Colleagues)

साथियों और सहकर्मियों के साथ नेटवर्किंग, शोध की दृश्यता और प्रभाव को बेहतर बनाने का एक महत्वपूर्ण तरीका है। एक मजबूत नेटवर्क बनाने से शोधकर्ताओं को अपने क्षेत्र में दूसरों से जुड़ने, विचारों को साझा करने और परियोजनाओं पर सहयोग करने का मौका मिलता है। साथियों और सहकर्मियों के साथ नेटवर्क बनाने के कुछ तरीके यहां दिए गए हैं:

- **सम्मेलनों और कार्यशालाओं में भागीदारी:** सम्मेलनों और कार्यशालाओं में भाग लेना आपके क्षेत्र के अन्य शोधकर्ताओं से मिलने का एक शानदार मौका हो सकता है। ये कार्यक्रम आपके क्षेत्र में नवीनतम शोध के बारे में जानने के साथ-साथ अन्य उपस्थित लोगों के साथ नेटवर्क बनाने के अवसर प्रदान करते हैं। दृश्यता बढ़ाने के लिए सम्मेलनों, कार्यशालाओं और अन्य कार्यक्रमों में शोध प्रस्तुत करें।
- **प्रोफेशनल संगठनों से जुड़ाव:** किसी प्रोफेशनल संगठन से जुड़ने से आपको उन अन्य शोधकर्ताओं से जुड़ने में मदद मिल सकती है जो आपकी रुचियों को साझा करते हैं। ये संगठन अक्सर सम्मेलन, कार्यशालाएँ और अन्य कार्यक्रम आयोजित करते हैं जो नेटवर्किंग के अवसर प्रदान करते हैं।
- **शोध परियोजनाओं में सहयोग:** शोध परियोजनाओं पर अन्य शोधकर्ताओं के साथ सहयोग करना आपके नेटवर्क को बनाने का एक शानदार तरीका है। दूसरों के साथ काम करने से आपको नए कौशल सीखने, नए दृष्टिकोण प्राप्त करने और अपने शोध क्षितिज का विस्तार करने में मदद मिल सकती है।



चित्र 4

- **सोशल मीडिया का उपयोग:** एक्स और लिंक्डइन जैसे सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म नेटवर्किंग के लिए शक्तिशाली माध्यम हो सकते हैं। शोधकर्ता इन प्लेटफ़ॉर्म का उपयोग अपने क्षेत्र के अन्य लोगों से जुड़ने, अपने शोध को साझा करने और नए अवसरों के बारे में जानने के लिए कर सकते हैं।

इस प्रकार साथियों और सहकर्मियों का एक मजबूत नेटवर्क बनाकर, शोधकर्ता अपनी दृश्यता बढ़ा सकते हैं, अपने शोध क्षितिज का विस्तार कर सकते हैं, और अंततः अपने क्षेत्र में अधिक प्रभाव डाल सकते हैं।

5.1.6 लेखक पहचानकर्ताओं का प्रबंधन और रखरखाव (Manage and Maintain Author Identifiers)

एक शोधकर्ता के रूप में आपकी दृश्यता के लिए, यह महत्वपूर्ण है कि आपके द्वारा बनाए गए या योगदान किए गए कार्यों को सरल, स्पष्ट और लगातार तरीके से पहचाना जा सके। अपने कार्यों को डिजिटल लेखक पहचानकर्ता से जोड़कर, आप यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि सहकर्मियों, प्रतिस्पर्धियों, प्रकाशकों और वित्तपोषकों को आपकी गतिविधि की सटीक तस्वीर मिले। शोध कर्ताओं द्वारा ऑर्किड, रिसर्चरआईडी (क्लेरिवेट एनालिटिक्स), स्कोपसआईडी (एल्सेवियर), गूगल स्कॉलर प्रोफाइल, आदि बनाकर इन सभी को ऑर्किड के साथ (integrate) करना चाहिये।

5.1.7 ओपन रिसर्चर एंड कंट्रीब्यूटर आईडी (ORCID)

ओपन रिसर्चर एंड कंट्रीब्यूटर आईडी (ORCID) एक 16-अंकीय स्थायी डिजिटल पहचान है जो किसी भी शोधकर्ता को अन्य सभी शोधकर्ताओं से अलग करती है। जिस तरह से पुस्तकों और विद्वानों की पत्रिकाओं को आईएसबीएन और डिजिटल ऑब्जेक्ट पहचानकर्ताओं के साथ ट्रैक किया जाता है, उसी तरह प्रकाशक, लेखक और संस्थान दुनिया भर के सभी विद्वानों और शोधकर्ताओं को पहचानने के लिए इस डिजिटल पहचान का उपयोग कर सकते हैं। ORCID iD, लगभग 2 मिलियन उपयोगकर्ताओं के साथ, शोधकर्ताओं, प्रकाशकों, वित्तपोषण संगठनों और शोध संस्थानों के लिए तेज़ी से पसंदीदा पहचानकर्ता बन रहा है। इस पहचानकर्ता का उपयोग पांडुलिपि और डेटा सबमिशन प्रक्रियाओं में किया जाता है और इसे मेटाडेटा में एम्बेड किया जाता है ताकि लेखक को उनके शोध आउटपुट के साथ स्थायी रूप से जोड़ा जा सके। इसका उपयोग अनुदान आवेदन प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करने के लिए और अनुसंधान संगठनों द्वारा अपने शोधकर्ताओं की शोध गतिविधियों को ट्रैक करने और रिपोर्ट करने के लिए भी किया जाता है। यह शोधकर्ता के शोध प्रभाव, उद्धरण और दृश्यता को बढ़ाएगा।

शोधकर्ताओं द्वारा अपने रिसर्चरआईडी (क्लेरिवेट एनालिटिक्स), स्कोपस आईडी (एल्सेवियर), गूगल स्कॉलर प्रोफाइल, आदि बनाकर तथा अपनी अन्य प्रोफ़ाइल व रेकॉर्ड को ऑर्किड रिकॉर्ड से लिंक करने की आवश्यकता है। यह प्रत्येक लेखक के सभी शोध पत्रों को एक साथ समूहित करता है तथा दिखाई देने वाले समान नाम वाले लेखकों के बीच अंतर करने में भी सहायता करता है।

5.1.8 कुछ अन्य तरीके

(i) **भारतीय अनुसंधान सूचना नेटवर्क प्रणाली(IRINS)** IRINS किसी संस्थान में शोधकर्ताओं के शोध आउटपुट को प्रदर्शित करने में मदद करता है। IRINS एक वेब-आधारित अनुसंधान सूचना प्रबंधन (RIM) सेवा है। यह पोर्टल अकादमिक, अनुसंधान



चित्र 5

(स्रोत: (https://irins.org/irins/)

एवं विकास और संकाय सदस्यों, वैज्ञानिकों को विद्वानों की संचार गतिविधियों को एकत्रित करने, क्यूरेट करने और प्रदर्शित करने की सुविधा प्रदान करता है। IRINS भारत में अकादमिक और अनुसंधान एवं विकास संगठनों के लिए निःशुल्क सेवा के रूप में उपलब्ध है। इस सेवा का उपयोग करके संगठन और शोधकर्ता अपनी दृश्यता बढ़ा सकते हैं।

(ii) **विशेषज्ञ डेटाबेस और राष्ट्रीय अनुसंधान नेटवर्क (VIDWAN):** VIDWAN, INFLIBNET द्वारा बनाया गया प्रमुख डेटाबेस है जिसमें भारत में शिक्षण और अनुसंधान में शामिल



चित्र 6

(स्रोत: (https://vidwan.inflibnet.ac.in/)

प्रमुख शैक्षणिक संस्थानों और अन्य अनुसंधान एवं विकास संगठनों में काम करने वाले वैज्ञानिकों/शोधकर्ताओं और अन्य संकाय सदस्यों की प्रोफ़ाइल शामिल है। यह विशेषज्ञों की पृष्ठभूमि, संपर्क पता, अनुभव, विद्वानों के प्रकाशन, कौशल और उपलब्धियों, शोधकर्ता की पहचान आदि के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। शोधकर्ताओं के पास विद्वान में एक प्रोफ़ाइल होनी चाहिए जो समान विषय के शोध पत्रकों के साथ सहयोग करने में मदद करेगी।

(iii) **डीस्पेस- करंट रिसर्च इंफॉर्मेशन सिस्टम (CRIS):** डीस्पेस-सीआरआईएस एक ओपन-सोर्स करंट रिसर्च इंफॉर्मेशन सिस्टम (सीआरआईएस) टूल है, जो डीस्पेस रिपोजिटरी सॉफ्टवेयर पैकेज का हिस्सा है। डीस्पेस एक डिजिटल अभिलेखागार प्रणाली है, जिसका उपयोग संस्थागत रिपोजिटरी के रूप में शोध आउटपुट, लाइब्रेरी संग्रह और डेटासेट जैसे विद्वानों और प्रकाशित डिजिटल सामग्री को स्टोर करने, संरक्षित करने और पहुंच प्रदान करने के लिए किया जाता है। डीस्पेस-सीआरआईएस का



चित्र 7

(स्रोत:(https://dspacecris.eurocris.org/)

उपयोग शोधकर्ताओं, परियोजनाओं, संगठन इकाइयों और अन्य संस्थाओं सहित शोध डेटा और जानकारी एकत्र करने और प्रबंधित करने के लिए किया जाता है। यह संस्थानों को शोध गतिविधियों और आउटपुट की निगरानी करने, शक्तियों और कमजोरियों की

पहचान करने और बजट आवंटन, सहयोग और वित्त पोषण के अवसरों के लिए अंतर्दृष्टि प्रदान करने में भी मदद कर सकता है।

(iv) **शोध प्रकाशनों की दृश्यता, प्रभाव और उद्धरण बढ़ाने के लिए कुछ अन्य तरीके निम्नानुसार हैं:**

- ऐसा देखा गया है कि अन्य शोधकर्ताओं के साथ मिलकर प्रकाशित शोध, विशेष रूप से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, अधिक दृश्यमान होता है और एकल-शोध पत्रों की तुलना में अधिक उद्धरण प्राप्त करता है।
- शोध कार्यों को बढ़ावा देने और प्रदर्शित करने के लिए ईमेल मार्केटिंग का उपयोग किया जा सकता है। अपने सहकर्मियों, साथियों और अन्य संबंधित शोधकर्ताओं को ईमेल के माध्यम से उन्हें अपने नवीनतम प्रकाशनों के बारे में बताएं तथा ईमेल सिग्नेचर में नवीनतम प्रकाशनों की लिंक रखकर साझा किया जा सकता है।
- अपने अकादमिक और प्रोफेशनल करियर में अपने नाम के एक ही रूप का उपयोग करने और स्वयं को अन्य लेखकों से अलग करना होगा। नाम की विशिष्टता एक लेखक के लिए एक 'उपस्थिति' स्थापित करती है।
- शोध निष्कर्षों तक पहुंच और पुनर्प्राप्ति (access and retrieval) में सुधार करना, इसके प्रभाव को बढ़ाने का सबसे अच्छा तरीका है।
- ऑल्टमेट्रिक एक वेब-आधारित प्लेटफ़ॉर्म है जो विद्वानों के शोध पत्रों के सोशल मीडिया उल्लेखों को ट्रैक करता है, और एक स्कोर प्रदान करता है जो किसी शोध पत्र के स्तर को मापने में मदद करता है। विभिन्न ऑल्टमेट्रिक टूल्स का उपयोग करके अल्टमेट्रिक स्कोर प्राप्त किया जा सकता है।

5.2 शोध के प्रभाव को मापना और ट्रैक करना (Measuring and Tracing of Research Impact)

प्रकाशनों की गुणवत्ता और मात्रा का मूल्यांकन सांख्यिकीय और गणितीय सूचकांकों के माध्यम से किया जाता है जिन्हें ग्रंथसूची संकेतक (Bibliometric indicators) कहा जाता है। शोध प्रकाशनों के प्रभाव को मात्रात्मक और गुणात्मक तरीके से मापने के लिए कई तरह के ग्रंथसूची संकेतक/मैट्रिक्स उपलब्ध हैं जिसमें h-इंडेक्स, जेसीआर ग्रंथसूची संकेतक, जर्नल इम्पैक्ट फैक्टर, एसजेआर, एसएनआईपी, एफडबल्यूसीआई, आल्टमैट्रिक्स, आदि शामिल हैं। इनका उपयोग करके शोधकर्ता व संगठन के प्रभाव को भी मापा जा सकता है। ग्रंथ सूची संकेतक शोधकर्ताओं और संगठनों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इन संकेतकों का उपयोग अक्सर शोधकर्ताओं के वित्तपोषण निर्णयों, परियोजनाओं के लिए अनुसंधान निधि का आवंटन करने, नियुक्तियों और पदोन्नति करने में किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में प्रकाशनों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है जो कि लगातार जारी है। उच्चतर शिक्षण संस्थानों द्वारा एक या अधिक रैंकिंग एजेंसियों के मूल्यांकन में भागीदारी की जाती है। किसी संस्थान की प्रतिष्ठा का मूल्यांकन करने के लिए अनुसंधान में प्रमुखता एक महत्वपूर्ण पैरामीटर है। गुणवत्तापूर्ण प्रकाशनों की मात्रा किसी संस्थान के मौजूदा शोध को आंकने वाले कारकों/पैरामीटरों में से एक है। रिसर्च आउटपुट का संस्थागत स्तर पर मूल्यांकन करते समय, कुल प्रकाशनों, उद्धरणों की संख्या, h-इंडेक्स जैसे संकेतकों पर ध्यान में रखा जाता है। वर्तमान में उपलब्ध अधिकांश मैट्रिक्स उद्धरणों(citations) पर आधारित हैं।

किसी भी शोध पत्र के ऑनलाइन प्रकाशन के पश्चात विभिन्न ऑनलाइन टूल्स के माध्यम से उनके उद्धृरण(citation) प्राप्त किये जा सकते हैं। शोध के प्रभाव को मापने के पारंपरिक संकेतक कई बार पूर्ण तस्वीर प्रदान करने में असमर्थ होते हैं। उद्धरण इस

पारिस्थितिकी तंत्र(ecosystem) का एक छोटा सा हिस्सा हैं और केवल एक प्रकार के प्रभाव को दर्शाता हैं। वर्तमान में प्रकाशित अधिकांश शोध पत्र अब इलेक्ट्रॉनिक और नेटवर्कयुक्त हैं। अल्टमैट्रिक्स, शोध की पहुंच और प्रभाव की पूर्ण तस्वीर प्रदान करने का एक प्रयास है।

अल्टमैट्रिक्स टूल्स की मदद से कितने बार कोई शोध पत्र डाउनलोड किया गया; पढ़ा गया; किसके द्वारा कमेंट किया गया; किसने साझा किया; क्या किसी न्यूज़ आउटलेट द्वारा कवर किया गया; कौन से देशों द्वारा शोध पते को देखा, पढ़ा या डाउनलोड किया गया; आदि के द्वारा सामाजिक प्रभाव भी प्रपट किया जा सकता हैं। Altmetric.com, इम्पैक्टस्टोरी, PLoS आर्टिकल लेवल मैट्रिक्स, प्लमएक्स, रीडरमीटर, साइंसकार्ड, पेपरक्रिटिक, क्राउडोमीटर आदि अल्टमैट्रिक्स के कुछ उदाहरण हैं।

अल्टमैट्रिक्स, अनुसंधान प्रभाव का मूल्यांकन करने के पारंपरिक संकेतकों जैसे h-इंडेक्स, इम्पैक्ट फैक्टर, आदि को प्रतिस्थापित नहीं करते हैं; बल्कि वे प्रभाव आकलन को अधिक सटीक और सार्थक बनाने के लिए अतिरिक्त डेटा प्रदान करते हैं।

6. उपसंहार

शोध की दृश्यता, उद्धरण और प्रभाव को बढ़ाने के लिए शोधकर्ताओं को एक बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है जिसमें अधिकतम प्रभाव प्राप्त करने के लिए पारंपरिक और आधुनिक तरीकों का संयोजन शामिल है। उच्च प्रभाव वाली जर्नल में शोध का प्रकाशन ही काफी नहीं है, प्रकाशन के पश्चात शोध कार्य को अन्य सभी शोधकर्ताओं तक पहुंचाना और उद्धरण प्राप्त करने के विभिन्न तरीकों पर भी विचार करना भी अति आवश्यक है। जब शोध कार्य की पहुँच व्यापक होती ही तो उद्धरणों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि होने की संभावना होती है। शोध प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में शोध दृश्यता और प्रभाव को बढ़ाने की संभावना होती है। अतः कुछ आसान तरीकों का उपयोग करके, उद्धरणों की संख्या, शोध का प्रभाव, शोधकर्ता अपनी प्रतिष्ठा और दृश्यता में सुधार कर सकते हैं। उच्च प्रभाव वाले जर्नल में प्रकाशन, सोशल मीडिया और अकादमिक नेटवर्किंग साइटों का उपयोग करना, प्रभावी और सूचनात्मक शीर्षक, सार और कीवर्ड बनाना और ओपन एक्सैस प्लेटफ़ॉर्म के माध्यम से व्यापक दर्शकों के लिए शोध को सुलभ और समझने योग्य बनाना शामिल है। साथ ही बेहतर टीमवर्क, शोध सहकार्यता और इस शोध पत्र में दर्शाये गए अन्य तरीके भी उपयोगी हो सकते हैं।

संदर्भ

1. Ale Ebrahim, Nader and Salehi, Hadi and Embi, Mohamed Amin and Habibi, Farid and Gholizadeh, Hossein and Motahar, Seyed Mohammad and Ordi, Ali, Effective Strategies for Increasing Citation Frequency (October 23, 2013). International Education Studies, Vol. 6, No. 11, pp. 93-99, 2013, Available at SSRN: https://ssrn.com/abstract=2344585
2. Ale Ebrahim, N. (2016a), Online Repository: Improving the Research Visibility and Impact, doi: 10.6084/m9.figshare.2060826.
3. Ale Ebrahim, N. (2016b), Research Tools: Enhancing Visibility and Impact of the Research, doi:10.6084/m9.figshare.2794237.
4. Ale Ebrahim, N. (2017), Improving Research Visibility Part 1: Academic Search Engine Optimization, doi: 10.6084/m9.figshare.4884275.v1.
5. Ali, N. and Saeed, S. (2019), "*Research data management and data sharing among research scholars of life sciences and social sciences*", DESIDOC Journal of Library and Information Technology,

Vol. 39 No. 6, pp. 290-299, doi: 10.14429/djlit.39.06.14997.

6. Current Research Information System - https://dspacecris.eurocris.org/
7. https://clarivate.com/blog/the-web-of-science-author-impact-beamplots-a-new-tool-for-responsible-research-evaluation/
8. IRINS - https://irins.org/irins/
9. Research Council, UK -http://www.rcuk.ac.uk/redirect/?newurl=/innovation/excellence-with-impact
10. Thorisson, G. (2012). "Persistent, unique identifiers for authors–ORCID and smaller publishers". *ScieCom Info*, Vol. 8 No. 3, pp. 1–4.
11. VIDWAN - https://vidwan.inflibnet.ac.in/
12. Ward, J., Bejarano, W. and Dudás, A. (2015). "Scholarly social media profiles and libraries: A review". *Liber Quarterly: The Journal of European Research Libraries*, Vol. 24 No. 4, pp. 174–204.
13. Wiley Author Service - https://authorservices.wiley.com/author-resources/Journal-Authors/Promotion/video-abstracts.html

भाग 2

टेक्नोलोजी, समाज एवं सस्टेनबिलिटी

टेक्नोलॉजी की समझ एवं स्वरूप – गांधी जी की दृष्टि

सारांश

महात्मा गांधी उन गिने-चुने व्यक्तियों में थे जिन्होंने भारतीय दृष्टि से पश्चिमी सभ्यता की समालोचना की है, जिसमें एक आयाम 'टेक्नोलोजी व समाज' विषय की चिंता का भी रहा है। प्रचलित वैज्ञानिक साहित्य में टेक्नोलोजी की दी गई परिभाषा अधूरी प्रतीत होती है। आश्चर्य है कि इसमें न तो प्रकृति के समवर्धन का ज़िक्र है और न ही समाज में सामंजस्य का समावेश है। इस शोध पत्र में टेक्नोलोजी को एक नई दृष्टि से परिभाषित करने का प्रयास है। महात्मा गांधी ने भारत में "भोजन-स्वास्थ्य" पैराडाइम पर महत्वपूर्ण संकेत दिए हैं, जिन पर ध्यान देना सार्थक होगा, जिसमें दृष्टि परिवर्तन की आवश्यकता स्पष्ट परिलक्षित होती है। यह शोधपत्र गांधी जी की टेक्नोलोजी व उद्योग सम्बन्धित चिंता और ख़ासतौर पर भोजन की समस्या पर उनके चिंतन का ध्यान दिला रहा है।

शब्द : टेक्नोलोजी, जीवंत समाज, गांधी जी की दृष्टि

प्रो. संतोष सत्या[1]
डॉ. हर्ष सत्या[2]

[1]प्रोफेसर एमेरिटस (सेवानिवृत्त),
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
भारतीय ग्रामीण विकास एवं
प्रौद्योगिकी केंद्र
[2]अनुसंधान समन्वयक
सोसाइटी फॉर इंटीग्रेटेड डेवलपमेंट
ऑफ हिमालय (मसूरी)
Email:
[1]*ssatya@rdat.iitd.ac.in*
[2]Harshsatya@gmail.com

1. प्रस्तावना

मानव सदियों से जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए टेक्नोलॉजी विकसित करके उपयोग करता आया है। जीवन जीने का पैराडाइम, विकास के मॉडल के साथ बदलता गया साथ ही टेक्नोलॉजी का स्वरूप भी। "टेक्नोलॉजी-समाज-सस्टेनबिलिटी" का संबंध चरमराने लगा। इसके कारण भोजन प्रसंस्करण (food processing, cooking etc.) पर गहरा प्रभाव पड़ा जिससे मानव का स्वास्थ्य चरमराने लगा। वर्तमान में विकसित देशों में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है जहाँ लम्बी आयु (life longevity) तो निश्चित रूप से प्राप्त है लेकिन गुणवत्तापूर्ण ज़िंदगी (quality life) कम होती जा रही है। फलस्वरूप advance health care system भी विकसित हो रहा है। ज़िंदगी में 'अकेलापन' बढ़ता जा रहा है जिसका प्रभाव मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता दिख रहा है। कुछ देशों में इसका समाधान पाने के लिए विभिन्न अनुसंधान किए जा रहे हैं जिसमें Loneliness मंत्रालय की स्थापना भी शामिल है। "भोजन-स्वास्थ्य" विषय पर लगभग प्रत्येक देश में अनुसंधान को प्राथमिकता दी जा रही है। हाल में Nutrogenomics (भोजन प्रकार व गुणवत्ता का gene expression पर प्रभाव) जैसे नए शोध के क्षेत्रों में भी कार्य किया जा रहा है।

गांधी जी भविष्यदृष्टा (visionary) थे। उन्होंने अपने वांगमय (जैसे हिंद स्वराज, भारत की खुराक की समस्या, हरीजन पत्रिका इत्यादि) में भारत में

"टेक्नोलॉजी का स्वरूप" पर खुल कर चर्चा की है तथा "भोजन-स्वास्थ्य" पैराडाइम पर विस्तार से अपनी दृष्टि निष्पादित की है।

यह शोधपत्र मुख्यतः उपरोक्त वांगमय तथा श्री धर्मपाल जी की पुस्तक "Understanding Gandhi" के एक अध्याय "On Technology" पर आधारित है। "मानव कर्म-दर्शन" (श्री ए० नागराज) में टेक्नोलॉजी के बारे में दी गयी संक्षिप्त झलक भी इस शोधपत्र में है। आईआईटी दिल्ली के मेधावी B.Tech. विद्यार्थियों के साथ सह-चिंतन (RDL 340 "Technology and Community Development के माध्यम से) से प्राप्त अनुभव 'टेक्नोलॉजी' शब्द को समझने में सहायक रहा।

2. साहित्य (Dictionary, Encyclopedia ...) में वर्णित टेक्नोलॉजी की परिभाषा - एक विश्लेषण

आई.आई.टी. दिल्ली में B.Tech. विद्यार्थियों ने साहित्य में पढ़कर टेक्नोलॉजी को कई प्रकार से परिभाषित किया। गहन विश्लेषण करते ही स्पष्ट होने लगा कि टेक्नोलॉजी की यह परिभाषा अधूरी है, इसमें कुछ महत्वपूर्ण कमियाँ हैं-

(i) इसमें मानव कल्याण (human welfare) शब्द ज़रूर है लेकिन टेक्नोलॉजी प्रयोग करने से मिले परिणाम में यह परिलक्षित नहीं होता है। अथवा यह कहें कि सही human welfare की स्पष्टता नहीं है।

(ii) किसी भी टेक्नोलॉजी का विकास 'मानव प्रकृति' के सहभागिता (interaction) से ही होता है लेकिन प्रचलित दी गयी परिभाषा में प्रकृति का नमो-निशान नहीं है। प्रकृति के प्रति आदर भाव तो शायद विचार में भी नहीं। यही कारण है कि मानव-प्रकृति संबंध धीरे-धीरे टूटता/शिथिल हो गया। फलस्वरूप मानवता जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, घटती आपसी समरसता आदि समस्याओं की गिरफ़्त में आ गयी है। आगे बढ़ने के लिए रास्ता बंद है।

(iii) ज़िंदगी जीने के लिए सभी आवश्यक टेक्नोलॉजी सामाजिक परिवेश में उपयोग की जाती हैं, बिना किसी संदर्भ में परिचालित नहीं। लेकिन आश्चर्य है कि यह जानते हुए भी टेक्नोलॉजी की परिभाषा में समाज के लिए कोई स्थान नहीं।

उपरोक्त मूल कमियों (fundamental drawbacks) के कारण घटती खाद्य गुणवत्ता, गिरता मानव स्वास्थ्य, बढ़ता आपसी वैमनस्य, घटती सहयोगी भावना आदि समस्याओं से मानवता जूझ रही है तथा कुछ ज्वलंत प्रश्न मानवता के समक्ष गम्भीरता से मुँह खोले खड़े हो गए हैं।

इस चर्चा के बाद विद्यार्थियों ने टेक्नोलॉजी की लगभग दस नई परिभाषा लिखी। उदाहरण के रूप में –

"Application of science for productive, peaceful and harmonious co-existence (सह अस्तित्व) of human and nature"।

3. टेक्नोलॉजी – गांधी जी की दृष्टि

गांधी जी ने 1909 में हिंद स्वराज लिखा। 1945 में Indian National Congress में गहन चर्चा के दौरान दृढ़ता से अपने विचार प्रस्तुत किए। इस भाग में उनके विचार – सभ्यता, टेक्नोलॉजी व उद्योग, ग्राम उद्योग, आधुनिकता में भी प्राचीन ज्ञान का सम्मान आदि सम्मिलित हैं।(Understanding Gandhi पुस्तक, अध्याय 3 On Technology से अनुदित सार)

3.1 विकास के संदर्भ में (Pattern of Development)

टेक्नोलॉजी का प्रश्न वास्तव में विकास के प्रश्न के आधीन है। और विकास का प्रश्न मानव और प्रकृति के सह-अस्तित्व की अवधारणा के आधीन है। 'विकास के मॉडल' पर हिंद स्वराज में कुछ मौलिक प्रश्न उठाए हैं।

(क) मानव की इच्छाओं की कोई सीमा नहीं होती। इच्छापूर्ति को लक्ष्य बना लेना एक भँवर में फँस जाना जैसा ही है। इसलिए भारतीय सभ्यता में इच्छाओं की एक नैसर्गिक सीमा समझी गयी है और ऐसा माना गया कि जब हमारा मन इच्छाओं से ऊपर उठ जाए, तभी सुख की स्थिति को पाना सम्भव होगा।

(ख) इच्छाओं पर नैसर्गिक सीमा के लिए यह आवश्यक है कि मानव जहाँ तक सम्भव हो

अपने श्रम से उत्पादन करे। इसलिए टेक्नोलोजी की पहली शर्त मानवीय श्रम को सँवार कर उत्पादन करने की है (जिसे आनंद कुमारस्वामी ने "टूल आधारित टेक्नोलोजी" कहा)। मानव का सुख और स्वास्थ्य, दोनो ही उसके श्रम के सदुपयोग से जुड़ा है।

(ग) इस दृष्टि से, छोटे-छोटे गावों में मानवीय विकास की सम्भावना अधिक दृष्टिगोचर होती है जहाँ सदियों से लोग श्रम द्वारा अपनी 'सहज' आवश्यकताओं की पूर्ति करते आए हैं, जहाँ इच्छाओं की एक नैसर्गिक सीमा तय होने के कारण मानव का सुख इच्छापूर्ति के अधीन न होकर मन की स्थिति से जुड़ा है। भारत के लोगों ने सदियों से गाँव में रहना ज़्यादा बेहतर समझा है। छोटे-छोटे गावों में परिवार-मूलक विकेंद्रित टेक्नोलॉजी से सभी कार्य सहज रूप से सम्पन्न हो जाते थे।

(घ) इस दृष्टि से, गांधी जी ने स्पष्ट किया कि आधुनिक पश्चिमी सभ्यता एवं इसकी टेक्नोलॉजी स्वभाव से ही शैतानी (satanic) है क्योंकि उसका संबंध न तो मानव के आत्म-बोध से है और न ही सुखी होने की इसमें कोई सम्भावना है। वह जानती है कि इच्छाओं का कोई अंत नहीं है, फिर भी इच्छापूर्ति को ही मानव का लक्ष्य समझती है। ऐसे में भारत को पश्चिम से कुछ भी सीखने की आवश्यकता नहीं है।[1]

3.2 टेक्नोलॉजी के संदर्भ में

3.2.1 विकास पर चर्चा करने के बाद, टेक्नोलॉजी के संदर्भ में गांधी जी के विचार देखने का महत्व है। उनके अनुसार व्यक्ति, समाज व टेक्नोलॉजी एक सम्पूर्ण चक्र/तंत्र (whole) बनाते हैं। एक ओर मनुष्य टेक्नोलॉजी का उपयोग कर उत्पादन करता है, दूसरी ओर टेक्नोलॉजी के प्रभाव से उसका शरीर व मन संस्कारित भी होते हैं। ऐसे ही, एक ओर समाज की आवश्यकता के लिए उत्पादन होता है, दूसरी ओर टेक्नोलॉजी का प्रयोग समाजिक ताने-बाने को प्रभावित करती है (जैसे, टेक्नोलॉजी का असर सांस्कृतिक विविधता तक पर पड़ता है)।[2]

3.2.2 गांधी जी ने खादी उत्पादन के उदाहरण से स्पष्ट किया – "किसी उत्पाद के उत्पादन से जुड़े विभिन्न कार्यों में टेक्नोलॉजी को लोगों की आपसी सहभागिता को प्रदीप्त करना चाहिए"। इसी प्रकार का अभिप्राय गांधी जी का ग्राम उद्योग के बारे में था।

3.2.3 गांधी जी की "टेक्नोलॉजी की समस्या" पर विचार को स्पष्ट करने की ज़रूरत है। गांधी जी गाँव में कारीगरी के पुनरुत्थान को आवश्यक मानते थे; जो काम खादी के क्षेत्र में हुआ वैसा ही प्रयास बाकि कारीगरियों के लिए होना ज़रूरी था। बिना इसके भारत का ग्रामीण अपनी प्राकृतिक स्थिति में नहीं जी सकेगा।

3.2.4 अंत में गांधी जी ने टेक्नोलॉजी व उद्योग पर अपने विचार पुनः स्पष्ट किए। इसके अंतर्गत – टेक्नोलॉजी व समाज बहुत नज़दीकी से जुड़े हैं।

(क) प्रत्येक व्यक्ति, समाज व टेक्नोलॉजी एक सम्पूर्ण चक्र/तंत्र (whole) बनाते हैं।

(ख) टेक्नोलॉजी समाज (desirable society) की सहज-सार्थक (genuine) आवश्यकताओं में/से उत्पन्न होनी चाहिए। फलस्वरूप ऐसी टेक्नोलॉजी सामाजिक ताने-बाने के आधीन ही होगी। इस प्रकार यह आधुनिक टेक्नोलॉजी कैसे विकसित की जाती है, उस तरीक़े से बिलकुल विपरीत है।

(ग) उद्योग के संदर्भ में उन्होंने कहा कि ऐसे सभी औद्योगिक इकाई जो ग्रामवासियों के कल्याण को प्रोत्साहन देती हैं, वह उनकी दृष्टि में सम्मलित हैं। आधुनिक उद्योग जब तक गाँव और ग्रामीण जीवन शैली का "दम नहीं निकालते", तब तक वे उसका लिहाज करेंगे।[3]

---

[1] यहाँ ध्यान देने योग्य है, गैर-पश्चिमी(native) सभ्यता की बैठक से की गई पश्चिमी सभ्यता की समालोचना के गिने-चुने उदाहरण ही हैं। शायद, हिन्द स्वराज मे ऐसा सबसे पहले हुआ। उस जमाने में ऐसी चेष्टा साहसपूर्ण रही होगी।

[2] चरख़ा न केवल उत्पादन की वस्तु बना बल्कि समाज को आर्थिक रूप से जीवित करने का माध्यम बना, व्यक्ति में धैर्य और शौर्य का परिचायक बना। 1925 में गांधी जी ने इस प्रयोग को स्पष्ट करते हुए कहा कि चरख़ा न केवल हमारे आर्थिक उन्नति का साधन है बल्कि इसका प्रतीक होना चाहिए कि हम साथ मिलकर कुछ सार्थक बना सकते हैं। ऐसा होने से, हमारे लोगों की शिथिलता समाप्त होगी।

[3] In 1940 Dr. Lohia asked Gandhi ji about his views on the possible use of Western science and technology in India, to which he responded "... (my point of view) will not exclude the industries mentioned by my correspondent so long as they do not smother the villages and village life".

(घ) "While I appreciate modern thought, I find that ancient things (wisdom of past) considered in the light of this thought looked so sweet".

4. उपसंहार (आशा की किरण व भावी चिंतन)

उपरोक्त चर्चा से विदित होता है कि गांधी जी के विचार टेक्नोलॉजी व उद्योग के स्वरूप को लेकर बिलकुल स्पष्ट थे। वे आज़ाद भारत में इनको प्रतिपादित करने के रास्ते में उत्पन्न कठिनाइयों से भी वाक़िफ़ थे।

"भोजन-स्वास्थ्य" पैराडाइम पर गांधी जी ने विस्तार से चर्चा की है क्योंकि उनकी दृष्टि से स्वस्थ समाज की आधारशिला मानव का होलिस्टिक स्वास्थ ही है। हाल में हुए अनुसंधान (Neutrogenomics) के परिणाम जानकर आश्चर्य होता है कि भोजन हमारे gene expression को भी प्रभावित कर सकता है। आयुर्वेद में "भोजन का तासीर" एवं "मानव का तासीर" के बीच समरसता रखने पर बल दिया गया है। इन दोनो के बारे में कुछ जानकारी उपलब्ध है। इस विषय पर गहन अनुसंधान की आवश्यकता है। जैसे -

(क) भोजन combination पर काफ़ी साहित्य है लेकिन विभिन्न खाद्य पदार्थों का तासीर measure करने की विधि (formula/ equation) उपलब्ध नहीं है,

(ख) मानव तासीर (वात – वित्त- कफ़) को कैसे मात्रात्मक रूप में गणना (quantify) करें, इसके लिए विधि (formula/equation) विकसित करने की आवश्यकता है,

(ग) कुछ जागरूक गांधीवादी परिवारों में brown rice vs polished rice, आटा चक्की व मिल में पिसा आटा आदि को लेकर कुछ प्रयोग किये गए हैं। उन्होंने यह पाया कि brown rice की polished rice की तुलना में लगभग 30-35% कम मात्रा (पूरा पोषण) मनुष्य के अच्छे स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त होती है। इसी प्रकार आटा चक्की से पिसा चोकर सहित मिश्रित अनाज का मोटा आटा (granular, सभी पोषक तत्व) की लगभग 30% कम मात्रा ही पर्याप्त है। (वर्तमान में बाज़ार में उपलब्ध मिल का ब्राण्डेड आटा (चोकर रहित) मैदा की तरह हो जाता है जो मानव शरीर के metabolism के लिए अत्यंत घातक/बाधक है। साथ ही, इसमें प्रसंस्करण एवं packaging के दौरान कई घातक रसायनों का उपयोग किया जाता है।)

(घ) वर्तमान में "भोजन-स्वास्थ" पैराडाइम को शिक्षा व्यवस्था में समावेश करने का प्रयास किया जा रहा है। लेकिन अधिकांश अनुसंधान कार्य बिना "दृष्टि-परिवर्तन" के किया जा रहा है। ऐसे माहौल में भी सौभाग्यवश कुछ सराहनीय अनुसंधान के प्रयास देखे जा सकते हैं। कुछ उदाहरण हैं –

(i) low rpm food processing equipments लोकप्रिय हो रहे हैं,

(ii) cooking प्रक्रिया का पुनः अवलोकन (microwave पर प्रश्नचिन्ह),

(iii) गुड़-खांडसारी उद्योग में नई टेक्नोलॉजी से वांछनीय संशोधन,

(iv) brown rice के क्षेत्र में आई.आई.टी. दिल्ली में अभिनव अनुसंधान। (आई. आई.टी. दिल्ली में एक पीएच.डी. थीसिस में "on–farm brown rice production" के लिए मशीन डिज़ाइन करके विकसित की गयी जिसका किसान के खेत पर ही परीक्षण किया गया। brown rice की पोषक गुणवत्ता भी नापी गयी। साथ ही techno-economics भी प्रस्तुत है। कुल मिलाकर यह एक विस्तृत सार्थक अध्ययन है (डा० मुकेश जैन)। इस मशीन के लोकप्रिय होने से गाँव में ही लोगों को brown rice सहज रूप से उपलब्ध हो सकेगा),

(v) street vended food जो कि एक पुरानी प्रथा रही है, उसमें व्यवस्था व गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए अनुसंधान (विशेषकर cart design सहित) करने से, उनकी आधुनिक बाज़ार में विशेष जगह बनी हुई है,

(vi) पारम्परिक textile उद्योग तथा अन्य कारीगर-कौशल क्षेत्र आदि आधुनिक उद्योग के समानांतर प्रचलित हैं,

(vii) ग्रामीण स्वच्छता के संदर्भ में KVIC द्वारा विकसित टेक्नोलॉजी "Biogas Plants connected with toilets" तथा सुलभ अनुसंधान संस्थान, दिल्ली द्वारा प्रयास समाज के लिए वरदान है।

आश्चर्य है कि विकसित देशों में सम्पूर्ण food processing sector "भोजन-स्वास्थ्य" पैराडाइम से कोसो दूर तीव्र गति से चल रहा है। अनेकों नए-नए खाद्य उत्पाद (ready to eat/fast food) विकसित किए जा रहे हैं। e-cooking (modern energy cooking प्रोग्राम के अंतर्गत) जैसे विषय पर किया जा रहा अनुसंधान भविष्य में बड़ा घातक सिद्ध हो सकता है।

गांधी जी द्वारा प्रतिपादित "टेक्नोलॉजी का स्वरूप" के मूल तत्वों पर जब पुनः दृष्टि डालते हैं तो नितांत स्पष्ट हो जाता है कि खाद्य सुरक्षा (food security) के लिए अति आवश्यक sustainable consumption की अवधारणा इसमें अंतर्निहित थी।

अंत में, यह ध्यान देने योग्य है, जहाँ एक ओर गांधी जी ने टेक्नोलॉजी के मुद्दे पर गहन विचार-विमर्श किया, वहीं दूसरी ओर साइन्स के बारे न के बराबर चर्चा की। टेक्नोलॉजी पर भावी चिंतन आधुनिक साइन्स की समालोचना के बिना सम्भव नहीं है। सस्टैनबिलिटी के संदर्भ में, इस ओर चिंतन अति आवश्यक जान पड़ता है।

आभार

लेखक इस शोधपत्र के लिए साहित्य उपलब्ध कराने के लिए डॉ. नीरज चौरसिया, अध्यक्ष-हिन्दी कक्ष के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

संदर्भ

1. Dharampal (2003). *Understanding Gandhi*. Chapter 3 "On Technology". Goa: Other India Publisher, p.32-50
2. Gandhi. (1905) (in Hindi) *Bharat ki khurak ki samasya*. Sangrahak R. K. Prabu, Ahmedabad : Nav Jeevan Prakashan.
3. Nagraj, A. (2004) (in Hindi) *Manav Karma Darshan, Jeevan vidya Pratistha, Bijnor*.
4. Lecture Notes. "Tech. & Community Development" course at IIT Delhi (1995-2013)
5. Term Paper Report in above course "Food and Gene Expression"
6. Jain, Mukesh (2019) "Design, Development and Evaluation of Thresher-Dryer-Dehusker for on-Farm Brown Rice Production". Ph.D. Thesis, CRDT, IIT Delhi.
7. Coomaraswamy, Anand K. (1910). *Art and Swadeshi*. New Delhi: Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd.

जीरो घाटी: गांधी के ‘सपनों के भारत’ की एक जीवंत कार्यशाला

प्रो. सौरभ तिवारी

अभिकल्प विभाग
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
Email: st@iitd.ac.in



सारांश

इस लेख में जीरो घाटी को महात्मा गांधी के 'मेरे सपनों के भारत' की जीवंत कार्यशाला के रूप में प्रस्तुत किया गया है। लेख में जीरो घाटी के आपातानी जनजाति के सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय दृष्टिकोण का विश्लेषण किया गया है, जिसमें सतत विकास, सामुदायिक जीवन, धर्म, कृषि और बांस जैसी स्थायी सामग्रियों का उपयोग प्रमुखता से शामिल है। जीरो घाटी का जीवन गांधीवादी विचारों के अनुकूल है और यह क्षेत्र गांधी के विचारों की भौतिक संभावनाओं को प्रकट करने के लिए एक महत्वपूर्ण अध्ययन का विषय बन सकता है। लेख में यह भी बताया गया है कि कैसे पारंपरिक ज्ञान और स्थानीय संसाधनों का उपयोग करके जीरो घाटी में सतत और आत्मनिर्भर जीवन शैली विकसित की गई है, जो आधुनिकता के दबावों के बावजूद अपने सांस्कृतिक मूल्यों को बनाए रखने में सक्षम रही है।

शब्द : जीरो घाटी, गांधीवादी सिद्धांत, आपातानी संस्कृति, सतत विकास, स्वावलंबन

1. प्रस्तावना

पिछले कुछ वर्षों में हमने विकास के विमर्श पर राजनीतिक और एक प्रत्यक्ष दबाव को महसूस किया है, खासकर राजनीतिक सत्ताधारियों ने इस पर काफी ज़ोर दिया है। दिलचस्प बात यह है कि आज से सात दशक पहले भी कहानी वही थी। भारत की स्वतंत्रता के बाद, प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने देश के भविष्य को मुख्य रूप से विकास और प्रगति पर केंद्रित नीतियों के साथ ही साथ शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के आधुनिक तरीकों के बतौर देखा था। भाखड़ा नांगल बाँध व चंडीगढ़ शहर इसका सजीव उदाहरण हैं जिन्हें प्रायः आधुनिकीकरण का मंदिर बोला जाता है।

एक वैश्विक शक्ति के रूप में खुद को उभारने के लिए भारत ने विकसित राष्ट्रों के मॉडल का अनुकरण करना चुना। शायद, यह मान लिया गया कि विशाल मानव संसाधन को उत्तर औपनिवेशिक मानवीय संकट को दूर करने के लिए भौतिकवादी प्रगति की आवश्यकता है। इस विकास-विमर्श के भीतर, महात्मा गांधी (Gandhi, 1947) के विचार सागर ‘मेरे सपनों का भारत’ के कई दर्शनों को, जैसे ग्राम स्वराज (Gandhi, 1962) और विकेंद्रीकरण को विकास की ‘आधुनिक’ मुख्यधारा में सदस्यता नहीं मिल पाई।

आने वाले दशक में अन्य विकासशील देशों के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए, भारत के कई मूल दर्शन व मूल दृष्टियों को, आधुनिक विकल्पों के



छायाचित्र 1 : जीरो घाटी का एक परिदृश्य

समक्ष अनदेखा कर दिया गया। तत्पश्चात, नब्बे के दशक में भारतीय आर्थिक उदारीकरण और नई सदी के वैश्वीकरण के तहत राष्ट्र में तेज़ी से भौतिकवादी और तकनीकी प्रगति हुई। पर आज भी मानवीय और सामाजिक सूचकांक जैसे महिला सशक्तीकरण, सभी धर्मों कि समानता, समर्थ-निर्बल अंतर जैसे मूल्यों में सुधार आवश्यक है। हमें मानना ही पड़ेगा कि विकास का लाभ विशाल भारतीय भूगोल और उसके नागरिकों तक समान रूप से नहीं पहुंचा है। इसी विकास ने कई प्राकृतिक प्रणालियों को भी व्याकुल किया है।

मौजूदा विकास-विमर्श के कार्य भी अपने खास संदर्भ और देश-काल के अनुरूप ऐसे कुछ प्रमाण हैं जो सतत विकास की ज्ञान प्रणालियों को बचाए रखने में सक्षम रहे हैं। यह शोध आलेख एक ऐसे ही प्रकरण पर केन्द्रित है। घटना अध्ययन (केस स्टडी) के तौर पर यहाँ जिसकी चर्चा की गई है। यह प्रसंग विकास के अगले प्रतिमान में गांधीवादी सिद्धांतों को दर्शाने और मुख्य धारा में आगे बढ़ाने की क्षमता रखता है।

2. प्रसंग

हाल ही में भारत की राजनीति में एक बार फिर से उत्तर-पूर्व पर ध्यान केंद्रित हुआ है। इस क्षेत्र में परंपरागत ज्ञान प्रणालियों के जीवंत दस्तावेज़ ध्यान देने योग्य है। अपने सामाजिक-पर्यावरणीय लचीलेपन के साथ ही ये प्रणालियाँ व देशज अभ्यास स्वाभाविक रूप से ही दीर्घजीवी या सतत (सस्टेनेबल) होते हैं और प्रकृति के साथ गहरा रिश्ता भी रखते हैं। उत्तर-पूर्व भारत ही नहीं बल्कि समूचे भारत में आज़ादी के बाद के विकास-मॉडल से देशज व जनजातीय आबादी के समक्ष उनकी अपनी प्रथाओं, पारंपरिक जीवन शैलियों और सतत अभ्यास के लिए प्रत्यक्ष और अमूर्त खतरे उभर कर आए हैं। विकास के इस मौजूदा विमर्श के प्रति उत्तर-पूर्व क्षेत्र की अतिसंवेदनशीलता (वल्नरबिलिटी) और अनुकूलनशीलता कई विद्वानों के लिए आज भी एक जटिल शोध-विषय बनी हुई है।

उत्तर-पूर्व क्षेत्र के अरुणाचल प्रदेश में जीरो घाटी का आपातानी सांस्कृतिक परिदृश्य अपनी एकीकृत टिकाऊ प्रथाओं और सातत्य के माध्यम से सांस्कृतिक पहलुओं के दर्शन का अवसर प्रदान करती हैं। जीरो घाटी साल 2014 से यूनेस्को की वर्ल्ड हेरिटेज साइट की अस्थायी लिस्ट में भी शामिल है। जैसा प्रख्यात मानव विज्ञानविद हैमनडॉर्फ (Haimendorf, 1946) ने उल्लेखित किया था कि आज भी, एक नज़र में जीरो आदिम जीवन जीने का तरीका याद दिलाता है। साथ ही, थोड़ी और गहराई से जांच करने पर यह "मानव-प्रकृति-संस्कृति" की व्यापक अंतर-क्रिया को भी उभारता है। इसलिए जीरो घाटी का जीवन गांधी के



छायाचित्र 2 : जीरो घाटी के हांग गाँव का एक घर

"मेरे सपनों का भारत" के विभिन्न बिंदुओं की भौतिक संभावनाओं के लिए अच्छा अध्ययन हो सकता है। यह लेख गांधी के संदर्भ में जीरो घाटी में एकीकृत सतत प्रथाओं और सातत्य के मूल का पता लगाने का ध्येय रखता है।

3. जीरो घाटी, अरुणाचल प्रदेश

जीरो घाटी में ज्ञान की कई परतें हैं जो धार्मिक प्रथाओं से लेकर शिल्प परंपराओं तक, आवास स्थानों से लेकर सामुदायिक जीवन-रूपों तक गहरे मानव-विज्ञान व अभिकल्प को दर्शाती हैं। पाठकों की समझ के लिए यह लेख कुछ प्रथाओं व मानवीय अभ्यासों को दिखाता है जो गांधी जी के विचारों से मेल रखते हैं।

3.1 समुदाय और जीवन

जीरो घाटी में लगभग हर एक परिवार, अधिकतर एकल परिवार के पास यहाँ के सात गाँवों में अपना अपना घर है। यहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना सामुदायिक जीवन में दिखती है। जीरो घाटी के गाँवों में रहने वाले लोगों का कोई भी एक व्यक्ति स्थानीय रूप से प्रशासन नहीं करता है। यहाँ प्रत्येक गाँव में बुज़ुर्गों की 'बूल्यान' नामक परिषद होती है, जो अधिकांश निर्णयों को क्रियान्वित करती है। आवश्यकतानुसार यह परिषद अन्य गाँवों के बड़े-बुज़ुर्गों के साथ भी परामर्श कर सकती है। यह प्रणाली गांधी के विकेंद्रीकरण और ग्राम स्वराज के विचारों की याद दिलाती है।

गाँव में, घरों के निर्माण में आज भी यहाँ उपलब्ध यांत्रिक विकल्पों के ऊपर मानव श्रम को महत्व दिया जाता है। जिसमें एक पारंपरिक सामुदायिक प्रक्रिया भी शामिल होती है। गाँव के सभी लोग एक घर के निर्माण में श्रमदान करते हैं। विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किए गए श्रम-समय को पंजीकृत किया जाता है। सभी से भविष्य में समकक्ष रूप में योगदान से वापसी की उम्मीद होती है। श्रम की गांधीवादी अवधारणा, जीरो घाटी में परंपराओं के माध्यम से संचालित होती है।

आपातनियों का वार्षिक उत्सव - 'म्योको' जो हर तीसरे वर्ष विभिन्न ग्रामसमूहों द्वारा आयोजित किया जाता है, न केवल सांस्कृतिक निरंतरता बल्कि ग्रामीणों के उत्कृष्ट संगठन कौशल को भी प्रदर्शित करता है। म्योको का उत्सव वह समय है जब सदियों से निरंतर अंतर-ग्राम मित्रता आगे बढ़ाने का अवसर मिलता है। इस मित्रता, जिसे बानू अजीन परम्परा भी कहते है, का एक सुंदर इतिहास है। इस परम्परा में विभिन्न गाँव के परिवार विपत्तियों और आपातकालीन स्थितियों में एक-दूसरे की मदद करते हैं और उत्सवों को भी एक साथ मनाते हैं (Bida, 2018)। म्योको के दौरान उपहारों के आदान-प्रदान जैसे रीति-रिवाजों के माध्यम से इसे आनुवंशिक रूप से जारी रखते हैं। यहाँ दिखने वाला अद्वितीय अंतर-ग्राम संबंध समाज के एकीकृत स्वरूप को प्रकट करता है और सांप्रदायिक एकता के गांधीवादी विचार को भी इंगित करता है।

3.2 धर्म और सहिष्णुता

जब दुनिया धर्मों के नाम पर लड़ रही है तब जीरो घाटी के लोगों ने धार्मिक प्रथाओं में वैचारिक संघर्ष से निपटने में एक असाधारण योग्यता का प्रदर्शन किया है। यहाँ के दो मुख्य धर्म विचार, पारम्परिक डोन्यी-पोलो और तुलनात्मक नवीन ईसाई धर्म, आपातानी संस्कृति के रीति-रिवाजों से बँधे हुए हैं। एक परिवार के भीतर ही विभिन्न धर्मों के व्यक्तियों का होना आम बात है। समूह साक्षात्कार की एक श्रृंखला से पता चला कि सामूहिक आपातानी पहचान सभी मतभेदों को भेद जाती है। जीरो घाटी के पारंपरिक दृष्टिकोणों में लोगों का विश्वास अधिकांश मतभेदों को समान कर गैर जरूरी बना देता है।

जीरो घाटी में क्षेत्रीय अप्रवासी जो मुख्य रूप से हापोली क्षेत्र में बसे हैं, स्थानीय लोगों और रीति-रिवाजों को अच्छी तरह से समझते है और उनसे

जुड़ने के लिए निरंतर प्रयत्नशील हैं। स्थानीय बाजार में एक दूसरे की भाषा और रिवाजों को सीखने में तत्परता ने इस प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाया है और व्यापार को भी संपन्न किया है। अपने गृह स्थानों के अलावा सार्वजनिक स्थानों पर भी आपातानी मान्यताओं ने अधिकांश अप्रवासी व्यापारियों के साथ बहुत ही सुगमता से पैठ बनाई है। अरुणाचल प्रदेश राज्य में लोकप्रिय भाषा हिंदी एक कड़ी के रूप में कार्य करती है। दूसरी ओर, अप्रवासियों ने आपातानी वर्णनात्मक शब्दों और वाक्यांशों को भी सीख लिया है। सभी धर्मों और विविधता का सम्मान, हिंदी का एक सम्पर्क भाषा के रूप में प्रचलन इत्यादि जैसे गांधीवादी गुण, जीरो घाटी में प्रतिदिन के आदान-प्रदान में दिखाई देते हैं।

3.3 कृषि

नारी सशक्तीकरण और आत्मनिर्भरता के साथ कर्मभूमि का गांधी जी का सपना जीरो घाटी के खेतों में दिखाई देता है। आपातानी कृषक अपने खेतों के हर एक वर्ग गज को प्रेम से रखते हैं। आसपास की जनजातियों के विपरीत, आपातानी खेतों में अस्थिर व स्थानांतरित कृषि (shifting cultivation) की परम्परा नहीं है।

"आसपास के पहाड़ी ढलानों से आए पोषक तत्व कृषि-पारिस्थितिक तंत्र का पोषण करते हैं। फसल के साथ पोषक तत्वों के नुकसान को, फसल के अवशेषों और गांवों के जैविक कचरे के उपयोग से बदल दिया जाता है ताकि मिट्टी की उर्वरता साल दर साल बरकरार रहे" - यूनेस्को (UNESCO, 2014)।

आपातानी लोगों के लिए खेत एक पवित्र स्थान है। प्रतिकूल जलवायु परिस्थिति में यह देखभाल यहाँ की महिलाएं करती हैं। अभिभावक के रूप में, धान के खेतों में अवांछित कीट या खरपतवार को एक इंच भी स्थान नहीं देती हैं। वर्षों से आपातानी कृषकों ने खेती की एक अनोखी और जैविक विधि विकसित की है। उन्होंने हल्की जुताई और बिना रासायनिक उर्वरक के साथ धान की खेती को अपनी पहचान बनाया है। खेतों पर सभी कार्य बिना किसी पशु श्रम, हल या किसी मशीन सहायता से होते हैं। केवल खोदने के लिए लकड़ी की छड़ों जैसे छोटे उपकरणों का उपयोग किया जाता है। यहाँ की जुताई विधि आदिम है लेकिन



छायाचित्र 3 : जीरो घाटी का एक खेत (फ़रवरी में)

इस प्रणाली की एक अनूठी विशेषता है। खेतों पर किसी भी बाहरी बल (ऊर्जा) का उपयोग ना करने के सचेत निर्णय से मिट्टी की गुणवत्ता व उर्वरता बनी रहती है।

पानी का सदुपयोग करने हेतु सभी खेत एक नेटवर्क के माध्यम से जुड़े रहते हैं। धान के खेतों को नहरों और नालियों के माध्यम से सींचा जाता रहा है। पानी का विवेकपूर्ण और कुशल उपयोग प्राकृतिक संसाधनों की देखभाल के विचारों को प्रकट करता है। खेत में उत्पादित चावल मुख्य रूप से घरेलू खपत के लिए होता है। हालांकि, जब भी



छायाचित्र 4 : जीरो घाटी का एक खेत (मई में)



छायाचित्र 5 : जीरो घाटी के बाँस बाग़ान

अधिशेष उत्पादन होता है तब इसे बेचा या आस पास के समूहों से बदला जाता रहा है। यहाँ की कृषि और खाद्य प्रणाली आत्मनिर्भर है।

आपातानी लोगों की पारिस्थितिकी की समझ प्रभावशाली है। वे विदेशी प्रौद्योगिकी के प्रति समालोचनात्मक रूख रखते हैं। हालांकि, नवाचार के पद्धतिगत पहलुओं के प्रति उनका रुख खुला है। 1960 के दशक में सरकार द्वारा चावल की खेती के साथ मछली पालन की यहाँ शुरुआत की गयी और धान के साथ मछली प्रजनन का प्रयोग इसकी उत्पादकता के लिए अति सफल रहा। इस विधि ने उपज की गुणवत्ता पर भी कोई समझौता नहीं किया। अब हाल ही में एक और नवाचार, कीवी की खेती में बढ़ोत्तरी हुई है। यहाँ की जलवायु भी इसके उत्पादन के लिए उपयुक्त है। अब इसे स्थानीय उद्यमियों द्वारा अपनाया और प्रचारित किया जा रहा है। एक गांधीवादी अर्थव्यवस्था यहाँ साकार रूप में विद्यमान है।

3.4 बाँस बाग़ान

जीरो घाटी में बसे गाँव कृषि क्षेत्रों के साथ-साथ जंगलों के नेटवर्क से भी जुड़े हुए हैं। बांस की ऊँची बाड़ें प्रायः बस्तियों और जंगल के बीच के अंतराल को रेखांकित करती है जिन्हें स्थानीय भाषा में मोर्य बिजे के रूप में जाना जाता है। कृषि भूमि और बस्ती के बीच इन्हें उक्को बिजे के रूप में जाना जाता है (Hana, 2018) जो बाँस के बाग़ान हैं। बाग़ान के बाँस घाटी में उगाए गए एक अनोखे सीधे तने वाले नर बांस (फीलोस्टैचिस) से बने होते हैं जो मौसमी बर्फ के साथ सर्दियों तक अच्छी तरह से खड़े होते हैं (Haimendorf, 1946)।

बाँस की असली उपयोगिता जीरो घाटी के घरों में दिखती है। सुदु (गिलास), पखो स्विन (चिमटा), पियियो (स्पैचुला), येडिन (भंडारण) जैसे अनेक बाँस के उपयोगी उपकरण आपातानी जीवन में सर्वव्यापी है। बैठने सोने के फर्नीचर के सामान भी बाँस से बना लिए जाते हैं। इसके अलावा आवास निर्माण के लिए बांस की उपयुक्तता और प्रयोज्यता इसका सबसे उपयोगी पहलू है।

बांस आपातानी अर्थशास्त्र का एक अभिन्न पहलू है। जीरो घाटी में रोजमर्रा के शिल्प उत्पादों, फर्नीचर वस्तुओं और निर्माण सामग्री की एक श्रृंखला के लिए तैयार सामग्री के रूप में बांस का कुशल उपयोग, गांधीवादी दर्शन के साथ सततवादी मानसिकता को संरेखित करता है। जैसा कि वर्धा, महाराष्ट्र के आश्रम में दिखाई देता है। गांधी जी स्थानीय निर्माण सामग्री का उपयोग करने के महान प्रस्तावक थे। बांस, जो कि जीरो में एक स्थानीय सामग्री है , उसका उपयोग करने की प्रथा यहां गांधीवादी सिद्धांतों के साथ मेल खाती है।

3.5 वस्त्र प्रथा

आपातानी कपड़े उत्तर-पूर्व क्षेत्र में अपनी उत्कृष्टता के लिए आसानी से पहचाने जाते हैं। कपड़ों की सृजन प्रक्रिया में, शुरुआत से लेकर इसके अंत तक मानवीय शिल्प प्रथाओं की निरंतरता आज भी सजीव है। जीरो घाटी की प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों के कारण कपास की कृषि और उत्पादन संभव नहीं है। इसलिए स्रोत सामग्री को आसपास के समुदायों से वस्तु विनिमय के रूप में या आसपास के बाज़ारों से खरीदा जाता है। हालांकि, वर्तमान समय में, स्थानीय बाजारों में विभिन्न रंगो के धागे आसानी से मिल जाते हैं। फिर भी, महिलाएं अपने आप पारंपरिक रूप से धागे बनाने के लिए कपास कातना पसंद करती हैं। इसी तरह, शिल्प सृजन प्रक्रिया के साथ भावनात्मक तौर पर भी जुड़ जाती हैं।



छायाचित्र 6 : पारम्परिक धागों से ओढ़नी बनाती एक कारीगर

कपड़ा कारीगरों के बीच कपड़ा बनाने के लिए चिचिन (लोई करघा) एक स्वीकार्य विकल्प रहा है। लागत, उपलब्धता और उपयोगिता इसकी लोकप्रियता के कारक रहे हैं। चिचिन के घटक भी स्थानीय शिल्प परंपराओं का ही एक हिस्सा रहे हैं। जीरो की शिल्पकार मुख्य रूप से महिलाएं सदियों पुरानी अभिकल्प परंपराओं को सहेजे हुए हैं, जिसमें ओढ़नी, शॉल और स्कर्ट बनाना शामिल है। वर्तमान काल में पर्यटकों की मांगों के समक्ष, बनावट और पैटर्न के साथ समझौता किए बिना जैकेट और शर्ट सहित कई नवाचार भी हुए हैं। रंगो के साथ भी कोई समझौता नहीं हुआ है क्योंकि वे मुख्य रूप से मौलिक हैं जो यहाँ की स्थानीय जड़ी-बूटियां से बनाए जाते रहे हैं। उत्साहवर्द्धक बात यह है कि स्थानीय सरकार की कई पहल और गैर सरकारी संगठन इस पूरी प्रणाली को आगे बढ़ा रहे हैं और अर्थव्यवस्था को बल दे रहे हैं। यहाँ की सम्पूर्ण वस्त्र प्रथा-प्रणाली में, गांधी जी के खादी के विचार के दर्शन होते हैं।

4. उपसंहार: आगे की चर्चा के लिए सूत्र

आज हमें मानव अस्तित्व के संघर्ष और प्रकृति के साथ द्वन्द को सम्बोधित करने की आवश्यकता है। भौतिक प्रगति के साथ आगे बढ़ने के लिए सशक्त और सतत समाधान अपेक्षित हैं। यह लेख रोजमर्रा के जीवन से जुड़े कुछ मुद्दे, जैसे कि समुदाय, धर्म, खाद्य उत्पादन, मकान, दैनिक उपकरण के आयामों का विस्तार करता है। यह मानव जीवन से सीधे सरोकार रखते हैं। आज की वैश्विक उथल-पुथल में, गांधी पिछली सदी से एक मौलिक प्रेरणा बने हुए हैं, जिनके विचारों का मौजूदा समय में मंथन किया जा सकता है। जीरो घाटी के आपातानी सांस्कृतिक परिदृश्य में प्रकृति, संस्कृति और लोगों के साथ सद्भाव में कई गांधीवादी पहलुओं के दर्शन होते हैं। अतः यह अध्ययन एक गांधीवादी 'केस स्टडी' के रूप में देखा जा सकता है।

हमारे देश में आज भी सरकारें, समूह और व्यक्ति, सभी अपने स्तर पर कुछ उल्लिखित तरीकों से अनेक प्रयास कर रहे हैं। दुर्भाग्यवश, यह सभी प्रयास वियोजित व खंडित स्तरों पर ही हैं। इन सभी प्रयासों में अगर कुछ कदम हमारे महान राष्ट्र के गांवों की ओर मुड़ जाएँ, जिसमें जीरो घाटी की तरह ही अनेकों गाँव हैं, जो अपने निज ज्ञान प्रणालियों के लिए जाने जाते है, तब गांधी के सपनों का सजीवीकरण यथार्थ हो जाएगा। शहरी जीवन के लिए भी इन सिद्धांतो का अनुसरण हो सकता है। यही हमारे देश को सतत जीवन के अगले प्रतिमान की ओर ले जाएगा।

आभार

लेखक मध्य प्रदेश सरकार की संस्था, पर्यावरण नियोजन एवं समन्वय संगठन का आभार प्रकट करते हैं जिनके माध्यम "गांधी पर्यावरण-दर्शन फेलोशिप 2019" से यह लेख विकसित हुआ।

संदर्भ

1. Bida, Hage (2018) Understanding Social Structure of the Apatanis. Popiriscope: Select Edition. Naharlagun: Popi Sarmiŏ Society. Vol-1.
2. Gandhi, M. K. (1947) India of My Dreams. Ahmedabad: Navjivan Publishing House
3. Gandhi, M. K. (1960) Village Industries. Ahmedabad: Navjivan Publishing House
4. Gandhi, M. K. (1962) Village Swaraj. Ahmedabad: Navjivan Publishing House
5. Haimendorf, Christoph Von Furer (1946) The Tribes of Subansiri Region. Itanagar: Institute for Preservation of Art, Culture and Literature.
6. Hana, Padi (2018) Land Tenure of Apatanis Society - A sociological Study. page 67
7. Rana, Gyati (2012) Nurturing the Indigenous culture: Fine flake from Miji Mihun from the sachet of Popi Sarmiŏ. Itanagar: Gyati Rana. Vol-1
8. Rana, Gyati (2012) Nurturing the Indigenous culture: Fine flake from Miji Mihun from the sachet of Popi Sarmiŏ. Itanagar: AG Design and Publication. Vol-2
9. Rana, Gyati (2018) Popiriscope: Select Edition. Naharlagun: Popi Sarmiŏ Society. Vol-1
10. Tewari, Saurabh (2019) Learning from Ziro: A trip to Ziro, Arunachal Pradesh. Studio Report. Bhopal: School of Planning and Architecture
11. Tewari, S., Sridharan, N., Pandey, R. U., & Wadwekar, A. (2020). Community, Craft and Culture: Learning Resilience from the Ziro Valley. Retrieved fromhttps://www.breucom.eu/mod/page/view.php?id=73716.
12. UNESCO (2014) Apatani Cultural Landscape. WHC Tentative List.

‘सस्टेनबिलिटी’ के संदर्भ में पारम्परिक ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था पर सैद्धांतिक चर्चा (भारत में उत्पादन, विनिमय और अवशेष पुनःचक्रण की परम्परा)

डॉ. हर्ष सत्या[1]
डॉ. गोपाल बाबू[2]

[1]अनुसंधान समन्वयक,
सोसाइटी फॉर इंटीग्रेटेड डेवलपमेंट ऑफ हिमालय(मसूरी)
[2]सूचना प्रौद्योगिकी विभाग, अजय कुमार गर्ग इंजीनियरिंग कॉलेज (गाजियाबाद)
Email:
[1]*harshsatya@gmail.com*
[2]*babugopal@akgec.ac.in*

सारांश

आधुनिक दुनिया ‘विकास के संकट’ (development paradox) में फँस गयी है जहाँ अब आगे मानव की ‘प्रगति’ उसके अस्तित्व के लिए ख़तरा बन गयी है। विकास का यह संकट आधुनिकता का सैद्धांतिक संकट प्रतीत होता है; यह संकट नैतिकता का संकट है, जिस कारण हम यह तय नहीं कर पा रहे कि मानव की प्रगति का अर्थ क्या है। इसलिए “सस्टेनेबल डिवेलपमेंट” के स्थायी प्रयास के लिए “पैराडाइम शिफ़्ट” की आवश्यकता है। हम भारत के वासी हैं और हमारे पास पारम्परिक व्यवस्थाओं की स्मृतियाँ अवशेष रूप में मौजूद हैं। पारम्परिक व्यवस्थाओं की सैद्धांतिक समझ इन स्मृतियों को भावी आधार दे सकती हैं, जिससे एक वैकल्पिक पैराडाइम की अवधारणा सम्भव हो सकेगी। इस शोधपत्र में पारम्परिक ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न आयामों पर सैद्धांतिक चर्चा प्रस्तुत है जिसमें सस्टेनबिलिटी की दृष्टि से तीन महत्वपूर्ण चिंताओं- सभी के लिए आहार की सुरक्षा, सांस्कृतिक विविधता का पोषण-संरक्षण और पर्यावरण के साथ संतुलन – पर चर्चा की गयी है।

शब्द : सस्टेनेबिलिटी, जजमानी व्यवस्था, पारम्परिक अर्थ-व्यवस्था

1. प्रस्तावना

मानवता ने आधुनिक समय में भौतिक समृद्धि की पराकाष्ठा देख ली है लेकिन आधुनिक दुनिया ‘विकास के संकट’ (development paradox) में फँस गयी है जहाँ अब आगे मानव की ‘प्रगति’ उसके अस्तित्व के लिए ख़तरा बन गयी है (Meadows et al., 1972)। महत्वपूर्ण बात है कि यह संकट आधुनिक जीवन-दृष्टि की विफलता नहीं बल्कि सफलता का परिचायक है। अर्थशास्त्री शूमाकर लिखते हैं (अनुदित सार):

“भौतिकवाद की दृष्टि इस धरती के लिए उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इसमें मानव की इच्छाओं की कोई सीमा निर्धारित नहीं है, जबकि यह धरती संसाधन

सहित तो सीमित ही है..... ऐसी परिस्थिति में उपरोक्त दृष्टि से जनित किसी समस्या का समाधान दस नयी समस्याएँ खड़ी कर देता है" (Schumacher, 1973)।

"An attitude to life which seeks fulfillment in the single-minded pursuit of wealth – in short, materialism – does not fit into this world, because it contains within itself no limiting principle, while the environment it is placed in is strictly limited. Already the environment is trying to tell us that certain stresses are becoming excessive. As one problem is being 'solved', ten new problems arise as a result of the first 'solution'.

विकास का यह संकट आधुनिकता का सैद्धांतिक संकट प्रतीत होता है; महात्मा गांधी पूछते हैं – "क्या भौतिक प्रगति और नैतिक प्रगति में संबंध नहीं है?" और बिना नैतिकता की चिंता किए किसी भी अर्थ-चिंतन को वह कूड़े के समान बताते हैं – "matter displaced is dirt" (Gandhi, 1916)। वास्तव में विकास का यह संकट नैतिकता का संकट है, जिस कारण हम यह तय नहीं कर पा रहे कि मानव की प्रगति का अर्थ क्या है। अमेरिकी चिंतक हैना आरेंडट ध्यान दिला रही हैं कि एक ओर आधुनिक मानव धरती की परिधि से मुक्त गहरे अंतरिक्ष की खोज में निकल गया है, लेकिन दूसरी ओर उसकी आत्म-छवि पशु के समान हो गयी है; ऐसे में अधिक से अधिक उत्पादन और जल्द से जल्द खपत मानव का लक्ष्य बन गए हैं (Canovan, 1998)।

नैतिकता का यह संकट गहरा है। आज "क्यूँ" और "क्या" के प्रश्न गौण हो गए हैं और "कैसे" का प्रश्न प्रधान हो गया है। इस कारण हमारा ध्यान सनातन "होने" से हट गया, और घटनाओं और उनके पीछे के कारण पर लग गया। आधुनिक संसार की "मेकनिस्टिक दृष्टि" यहाँ से पैदा हुई, जिसकी नियती आरेंडट के अनुसार शिथिलता और नपुंसकता है। आरेंडट लिखती हैं (अनुदित सार):

"अब ऐसा लगता है कि जो आधुनिक युग मानव की गतिशीलता का परिचायक था, अंत में आते आते वह मानव की शिथिलता और नपुंसकता के युग में तब्दील हो गया है, जो इतिहास में कभी नहीं देखा गया" (Arendt, 1958)।

"It is quite conceivable that the modern age – which began with such an unprecedented and promising outburst of human activity – may end in the deadliest, most sterile passivity history has ever known".

अब यह स्पष्ट है कि "सस्टेनेबल डिवेलपमेंट" के स्थायी प्रयास के लिए "पैराडाइम शिफ़्ट" की आवश्यकता है। हम भारत के वासी हैं और हमारे पास पारम्परिक व्यवस्थाओं की स्मृतियाँ अवशेष रूप में मौजूद हैं। पारम्परिक व्यवस्थाओं की सैद्धांतिक समझ इन स्मृतियों को भावी आधार दे सकती हैं, जिससे एक वैकल्पिक पैराडाइम की अवधारणा सम्भव हो सकेगी।

इस शोधपत्र में पारम्परिक ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न आयामों पर सैद्धांतिक चर्चा प्रस्तुत है।

2. पारम्परिक भारत की आर्थिक स्थिति

पारम्परिक अर्थ-व्यवस्था पर ध्यान देने से पहले, पारम्परिक भारत की आर्थिक स्थिति की एक छोटी झलक आवश्यक है। भारत को 'सोने की चिड़िया' ऐसे ही नहीं कहा गया। हम ये जानते ही हैं कि भारत की समृद्धि ने दुनिया के यात्रियों, विचारकों और आक्रांताओं को हज़ारों साल से आकर्षित किया है। लेकिन प्रचलित साहित्य में भारत को कृषि-प्रधान सभ्यता कहा गया जो एक बड़ी त्रुटि लगती है।

पर्याप्त संकेत उपलब्ध हैं जो पारम्परिक अर्थ-व्यवस्था की समृद्धि की ओर इशारा कर रहे हैं। 1750 तक दुनिया का लगभग एक-चौथाई औद्योगिक उत्पादन भारत में हो रहा था (Huntington 1996)। इस उत्पादन की गुणवत्ता की ख्याति दुनिया भर में थी। जैसे, चौथी शताब्दी रोम में सेंट जेरोम विवेकशील होने की तुलना भारतीय कपड़े से करता है - "wisdom is as enduring as dyes of India" (Uzramma 2008)। ऐसे ही भारत में निर्मित लोहा, जिसे अंग्रेज़ अधिकारी वूट्ज स्टील कहते हैं और सर्जरी के औज़ार के लिए सबसे उपयुक्त पाते हैं (Dharampal, 2000) (दिल्ली में अशोक स्तम्भ को हम आज भी देख सकते हैं, जिसने जंग नहीं पकड़ा)। टेक्नोलोजी तंत्र के ऐसे अनेक उदाहरणों का संकलन किया गया है (PPST Bulletin, 1994)।

समाज की आर्थिक स्थिति भी ठीक ही थी। अर्थशास्त्री ऐडम स्मिथ के अनुसार अट्ठारहवी शताब्दी में खेत के मज़दूरों की आमदनी शहर में बसे कारीगरों से अधिक थी (Adam Smith, 1965)। यह तब था जब अंग्रेज़ी प्रशासन के आधीन आने के बाद भारत के गाँव ग़ुरबत में डूबने शुरू हो गए थे, फिर भी किसान की आर्थिक स्थिति इंग्लैंड के किसान से काफ़ी बेहतर थी। समाज में आर्थिक ग़ैर बराबरी की भी समस्या वैसी नहीं थी जैसी हम आज देखने को अभ्यस्त हैं। इसके संकेत हमें सन् 1806 में बेल्लारी जिले के कलेक्टर की रिपोर्ट में मिलता है। इस रिपोर्ट में परिवार में इस्तेमाल होने वाली कुल 23 उपभोक्ता वस्तु जैसे घी, दाल, पान, औषधि इत्यादि की खपत अंकित की गयी और उनका मूल्याँकन रुपये में किया गया। इसके आधार पर जिले के परिवारों को उच्च, मध्य और निचली श्रेणी में बाँटा गया (Dharampal 2000)। उच्च श्रेणी में 2,59,568 लोग, मध्य श्रेणी में 3,72,887 लोग और निचली श्रेणी में 2,18,684 लोग सूचित हुए। इन तीनों श्रेणियों में अनाज की खपत बराबर सी थी (आधा सेर प्रति दिन), घी और तेल की खपत 3:1:1 और दालों की खपत 8:4:3 के अनुपात में थी। यह विस्तृत रिपोर्ट एक जिले की है। इसके आधार पर पूरे भारत का अनुमान लगाना शायद ठीक नहीं होगा, लेकिन इसे महत्वपूर्ण संकेत मानना चाहिए। सत्रहवीं शताब्दी में पेलसार्ट लिखते हैं कि बादशाह जहांगीर का भोजन (खिचड़ी) वही है जो आम भारतीय का है (F. Pelsaert, 1925), और अट्ठारहवी सदी के आख़िर में अंग्रेज़ अधिकारी जेम्ज़ स्टूअर्ट लिखते हैं कि हैदराबाद के इलाक़े में मालिक और नौकर के कपड़ों में बस इतना ही भेद है कि नौकरों के कपड़े थोड़े मैले दिखते हैं (Read, 1779)।

अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद ने भारतीय औद्योगिक और व्यापार परम्परा की कमर तोड़ दी, जिसका विस्तृत वर्णन हमें पंडित सुन्दरलाल और रमेश चन्द्र दत्त के ग्रंथों में मिलता है।

अतः यह कहना उचित रहेगा कि पारम्परिक अर्थ व्यवस्था ने भारत को समृद्ध बनाया था। सस्टेनबिलिटी की दृष्टि से तीन महत्वपूर्ण समाधान पा लिए थे – सभी के लिए आहार की सुरक्षा, सांस्कृतिक विविधता का पोषण-संरक्षण और पर्यावरण के साथ संतुलन। इस संदर्भ में, पारम्परिक अर्थ-व्यवस्था के कुछ सिद्धांतों पर चर्चा करना उपयोगी होगा।

3. अर्थ-व्यवस्था के तीन आयाम: उत्पादन, लेन-देन और अवशेष पदार्थों का पुनःचक्र

3.1 परिवार मूलक उत्पादन प्रक्रिया और विविधता संरक्षण (Family Centric Production Process and Facilitation of Diversity)

भारत में समृद्ध औद्योगिक परम्परा तो रही है लेकिन आश्चर्य की बात है कि यहाँ न तो कारख़ाने थे, न उनमे काम करने वाले मज़दूर और न ही उत्पादन को बेचने के लिए दुकाने। भारत की पारम्परिक औद्योगिक परम्परा परिवार व्यवस्था के आधीन रही है। परिवार का हर सदस्य – महिला, पुरुष, बूढ़े, बच्चे उत्पादन में लगे थे और आय को पारिवारिक माना गया था, व्यक्तिगत नहीं। और यहाँ उत्पादन बेचने के लिए नहीं बल्कि देने के लिए किया जाता था (गाँव के अंदर की अर्थ व्यवस्था)।

परिवार मूलक उत्पादन प्रक्रिया में कारीगर जातियों की महत्ता रही है और इस व्यवस्था के लिए "टूल-आधारित" टेक्नोलोजी उपयुक्त रही है। ऐसा कहना ठीक होगा कि भारत में सांस्कृतिक विविधता का श्रेय गावों की जाति व्यवस्था और "टूल-आधारित" टेक्नोलोजी को जाता है (Satya, 2020a)। जैसे, एक बुनकर अपने करघे पर हर एक साड़ी अलग डिज़ाइन की बुन सकता है, या कुम्हार अपने चाक पर हर बर्तन अलग ढंग का बना सकता है। ध्यान देने योग्य है कि बुनकर और कुम्हार के घर का डिज़ाइन भी अलग अलग होता था जो उनके काम के लिए उपयुक्त था।

"टूल-आधारित" टेक्नोलोजी पर ध्यान देना आवश्यक है। इस टेक्नोलोजी का महत्व केवल उत्पादन के संदर्भ में नहीं बल्कि कारीगर के शरीर और मन को संस्कारित करने में भी है। व्यक्ति का सामाजिक, कलात्मक और आध्यात्मिक विकास उत्पादन प्रक्रिया से जुड़ा ही था, जो पारम्परिक दृष्टि का परिचायक है, जिसे शूमाकर बौद्ध दृष्टि कहते हैं (Schumacher 1993)। इसके विपरीत, आधुनिक कारख़ाने की व्यवस्था में "मशीन-आधारित" टेक्नोलोजी का उपयोग हुआ जिसने उत्पादन प्रक्रिया को मानव के समग्र विकास से अलग किया है। इस अलगाव से एक ओर उत्पादन प्रक्रिया में गति आना सम्भव हुआ – कम

से कम समय में अधिक से अधिक मात्रा में उत्पादन करना – लेकिन दूसरी ओर मानव के व्यक्तित्व का ह्रास हुआ है। आने वाले समय में बढ़ते ऑटोमेशन विशेषकर आर्टिफ़िशल इंटेलिजेन्स से ये समस्या और गहरी एवं अंधकारमय होती दिख रही है।

कारख़ाने की व्यवस्था को आधुनिकता की शुरुआत माना जा सकता है जिसके कारण केंद्रीयकरण (centralization), एक-मानकता (standardization) और अधिकतम उत्पादन (mass production) आधुनिकता के परिचायक बने (Orr 2003)। इसका एक बड़ा दुष्परिणाम विविधता के ह्रास में देखा जा सकता है। जैसे, आज दुनिया की लगभग 90 प्रतिशत भाषाएँ अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही हैं (Hale 1999) (एक भाषा शायद सबसे महत्वपूर्ण ज्ञान का स्त्रोत होती है)। यूरोप और अमेरिका में सरकारों ने "मल्टीकल्चरिज़्म" के प्रयास किए हैं, लेकिन समस्त प्रयासों के बावजूद सांस्कृतिक विविधता का ह्रास ही हुआ है। 2010 में जर्मन चांसेलर अंजेला मरकल ने कह दिया कि "मल्टीकल्चरिज़्म" के उनके तमाम प्रयास विफल हो गए (Wasmer 2013, p.163)। इस विफलता का कारण कारख़ाने की व्यवस्था को समझा जा सकता है।

कारख़ाने की व्यवस्था का दूसरा दुष्परिणाम है परिवार व्यवस्था का टूट जाना। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उत्पादन प्रक्रिया परिवार से बाहर निकल कारख़ाने के आधीन आ गयी। उत्पादन का परिवार से अलगाव के कारण कुछ आधुनिक समस्याएँ पैदा हुई। जैसे, परिवार के पुरुष बाहर निकल उत्पादन में जुड़े और महिलाएँ परिवार में सीमित हो उत्पादन से कट गयी। फिर, जो आय पहले पारिवारिक मानी जाती थी, वह अब व्यक्तिगत माने जाने लगी। इसके कारण महिलाओं का परिवार छोड़ बाहर निकलने पर जोर दिए जाने लगा।

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट होता है कि सस्टेनबिलिटी की दृष्टि से समाज के समक्ष दो महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं – विविधता (सभी प्रकार की जैसे सांस्कृतिक, जैविक इत्यादि) का ह्रास और परिवार का टूटना। साथ ही इनके लिए बदलती परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त टेक्नोलोजी विकसित करना।

3.2 लेन-देन की मिश्रित व्यवस्था (Complex System of Exchange)

अर्थ–व्यवस्था का दूसरा आयाम है लेन-देन की प्रक्रिया। पारम्परिक ग्राम व्यवस्था में लेन-देन की मिश्रित व्यवस्था (complex system) रही है- बहुरूपी मुद्रा (multiple currencies), समय-स्थगितकरण लेन-देन (time deferred exchange) और अधूरा लेन-देन (unfinished exchange) का रिवाज रहा है। प्रचलित साहित्य में इस पर ध्यान नहीं दिया गया।

3.2.1 बहुरूपी मुद्रा का चलन

बहुरूपी मुद्रा (multiple currency) में धन, धान्य, कपड़ा, पशु, वस्तु और श्रम शामिल रहे हैं; वाइसर के काम में इसकी विस्तृत झलक मिलती है (Wiser, 1936a)। जैसे, 1920 के दशक में करीमपुर गाँव में (जो वाइसर की अध्ययन स्थली थी) सामान्य आय में पैसा और वस्तु का मिश्रण चल रहा था। फिर फ़सल कटने पर हिस्सेदारी भी आय का माध्यम थी। और कुछ जातियों के बीच श्रम का सीधा-सीधा लेन-देन तय था। इनके अलावा सभी के आर्थिक अधिकार भी तय थे, जैसे विहार की जगह, चूल्हे का इंधन, घर की मरम्मत और दाह-संस्कार के लिए लकड़ी, जजमान के खेत से सब्ज़ियाँ और फ़ल, कपड़ा, पशु को चरने की जगह, ज़रूरत पड़ने पर जजमान से बिना ब्याज के उधार इत्यादि "जजमानी हक़" (वाइसर के शब्द) माने गए हैं। वाइसर ने 17 आर्थिक अधिकारों की सूची बनायी जिन्हें वे "कनसेशंस" कहते हैं, और जिन्हें वे आर्थिक व्यवस्था के स्थायित्व का श्रेय देते हैं। वाइसर लिखते हैं (अनुदित सार):

"हर जाति के सामान्य व्यक्ति के लिए (उसकी जजमानी) अधिकारों का मूल्य इतना होता है कि बिना हिचके वह शहर में मिल रही नौकरी ठुकरा सकता है" (Wiser, 1936b p.11)।

"The value of the concessions to the average man in any given group is so great that without hesitation he turns down a fixed cash income that may be offered to him by a mill employer in a neighboring city".

पारम्परिक अर्थ-व्यवस्था में सभी परिवारों की बंधी जजमानी थी, जिसके कारण सभी की आहार की

सुरक्षा सुनिश्चित थी। बंधी जजमानी को वाइसर "फ़िक्सड क्लाययंटेल" (fixed clientele) कहते हैं (Wiser, 1936c)। भारत में बेरोज़गारी और आर्थिक कारणों से पलायन की समस्या, दोनो ही पारम्परिक अर्थ-व्यवस्था के टूटने के कारण पैदा हुई हैं। फिर, आधुनिक अर्थ-व्यवस्था में एक मानक मुद्रा (standard currency) का वर्चस्व हुआ जिसके कारण आर्थिक ग़ैर बराबरी और ग़रीबी का संकट खड़ा हो गया।

सस्टेनबिलिटी की दृष्टि से आज आधुनिक समाज के सामने एक बड़ी चुनौती आर्थिक ग़ैर बराबरी है। इसके पीछे का मूल कारण एक-मानक मुद्रा (standard currency) का प्रचालन और वर्चस्व है जिस कारण मानव श्रम का सही मूल्याँकन करना एक बड़ी समस्या हो गयी है।

3.2.2 'समय-स्थगितकरण लेन-देन' का शिष्टाचार

लेन-देन की व्यवस्था का दूसरा आयाम है समय-स्थगित शिष्टाचार (time deferred exchange protocol)। वस्तु देने और भुगतान लेने के बीच समय का स्थगितकरण (time deferment) होता था। वाइसर ने भुगतान प्रक्रिया को पाँच हिस्सों में बाँटा है – रोज़ का भुगतान, महीने का भुगतान, छः महीने का भुगतान, काम का अलग से भुगतान और विशेष भुगतान के अवसर (Wiser, 1936d)। विशेष अवसर में शादी-ब्याह, मृत्यु, जन्म, जनेयु धारण, कथा-आयोजन, जन्मदिवस, विभिन्न देवी-देवताओं की पूजाएँ, तीज-त्यौहार जैसे होली, दिवाली इत्यादि, हर महीने अमावस्या, पूर्णिमा और एकादशी हैं। इनके अलावा स्थानीय मेले जो ऋतुओं के हिसाब से होते हैं जैसे नवरात्रि, चैत का मेला, फाल्गुन का मेला इत्यादि भी विशेष भुगतान के अवसर रहे हैं। इस बात की पुष्टि रवींद्र शर्मा[1] भी करते हैं (उन्होंने गृहप्रवेश को भी महत्वपूर्ण पर्व बताया है)। इनके अलावा वाइसर ने 17 अधिकारों (concessions) की एक सूची भी बनाई – जैसे, खेत में अपने लिए सब्ज़ी बोने का अधिकार, ज़मीन पर घर बनाने का अधिकार, कच्चे माल का अधिकार इत्यादि (Wiser, 1936e)।

3.2.3 'अधूरी' लेन-देन प्रक्रिया

पारम्परिक ग्राम व्यवस्था में लेन-देन की प्रक्रिया को पूर्ण नहीं माना गया (non terminating exchange)। बहुरूपी मुद्रा चलन के कारण यह कहना सम्भव नहीं होता कि फलानी वस्तु के बदले दूसरी वस्तु कितनी होगी। जैसे, कितने घड़ों के बदले कितना अनाज बराबर माना जाएगा यह आँकलन सम्भव नहीं होगा। फिर, एक ही मात्रा में दी गयी वस्तु के अलग-अलग भुगतान रहे हैं। जैसे, कुम्हार को एक परिवार से अलग मात्रा में अनाज मिलता था और दूसरे परिवार से अलग मात्रा में भले ही दोनो को समान मात्रा में घड़े दिए गए हों। ऐसे में यह मानना ज़्यादा बेहतर होगा कि कुम्हार और उसके जज़मानों के बीच लेन-देन पूरा नहीं हुआ है, कुछ शेष रह गया है। एक दूसरे के प्रति ऋण का भाव पारम्परिक ग्राम व्यवस्था का आधार बनता है जिसके कारण लेन-देन के संबंध पीढ़ियों तक चलते थे।

इसके विपरीत आधुनिक व्यवस्था में क्यूँकि एक मानक मुद्रा का वर्चस्व है, कुम्हार के घड़े और किसान का अनाज दोनो का मूल्य रुपय में तब्दील हो जाता है। फलस्वरूप लेन-देन के उपरांत कोई भी किसी का ऋणी नहीं रहता; आधुनिक व्यक्ति ये मान कर जी सकता है कि वह किसी का ऋणी नहीं है। ऋण भाव के अभाव में सामाजिकता कमज़ोर होती है।

3.3 अवशेष पदार्थों का पुनःचक्रण और पर्यावरण से संतुलन

अर्थ-व्यवस्था में उत्पादन और लेन-देन के बाद, अवशेष (waste) को पचाना भी महत्वपूर्ण आयाम है। पारम्परिक व्यवस्था में एक उत्पादन प्रक्रिया का अवशेष दूसरी उत्पादन प्रक्रिया के काम में आता था। जातियों के बीच अंतर-संबंध का यह एक महत्वपूर्ण आयाम रहा है जिस पर ठीक से ध्यान नहीं दिया गया। जैसे, कर्णाटक में भेड़वालों और किसान के बीच इस संबंध को आज भी देखा जा सकता है – भेड़ का मल-मूत्र खेत को उर्वरक बनाता है और फ़सल कटने के बाद का अवशेष भेड़ का भोजन बनता है (Satya, 2020b)। इसका सैद्धांतिक विवरण सत्य और बाबू के शोध पत्र में दिया गया है (Satya and Babu

[1] रविंद्र शर्मा पारम्परिक कलाओं में निपुण व्यक्ति थे जिन्होंने आदिलाबाद में विविध जातियों के बीच रहकर उनकी कलाएँ सीखीं और उनके सामाजिक व्यवहार की गहन समझ बनायी।

2023) और इस संबंध को एक डॉक्युमेंटरी फ़िल्म भेड़चाल (निर्देशक अंकित पोगुला) में भी दिखाया गया है।

आधुनिक उत्पादन प्रक्रिया में अवशेष (waste) को बाहर निकालने का प्रबंध किया जाता है (externalization of waste)। इसे हम आज देख ही सकते हैं – शहरों का कूड़ा गाँवों में डाल दिया जाता है और अमीर देशों का कूड़ा ग़रीब देशों में डाल दिया जाता है। प्रचलित साहित्य में इस पारम्परिक ग्राम जाति व्यवस्था को पर्यावरण संतुलन की दृष्टि (sustainable systems) से नहीं देखा गया है। इस दिशा में शोध काफ़ी उपयोगी रहेगा।

4. कर्तव्य मूलक पैराडाइम

ऊपर हुई चर्चा को आधार मानते हुए हमारा प्रस्ताव है कि भारत की अर्थ-व्यवस्था को 'व्यय-प्रधान' कहा जा सकता है। (यह शब्द प्रो. नवज्योति सिंह के साथ बातचीत में गढ़ा गया था)। यहाँ उत्पादन अपने जजमान को देने के अर्थ में होता था, न कि खुले बाज़ार में बेचने के अर्थ में। पारम्परिक अर्थ–व्यवस्था में महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है कि किस अवसर पर किसको देना है, क्या देना है, कितना देना है, और कैसे देना है। इनके आधार पर विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक व्यवहार बना था।

दूसरे शब्दों में, जजमान की आहार की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी अपनी मानी गयी थी और अपने आहार की सुरक्षा जज़मानो पर छोड़ रखी थी। भारतीय अनुभव है कि गाँव में जब सभी अपने दायित्व के अनुसार देते हैं, तब सभी को उपलब्ध होता है। इसकी देख-रेख पुरोहित की ज़िम्मेदारी थी। (पुरोहित शब्द पुर + हित की संधि से बना है – वो जिसे पुर के हित की चिंता है। पुर एक छोटे इलाक़े को कहते हैं जैसे कानपुर, कोहलापुर, बिशनुपुर इत्यादि)। अर्थशास्त्री कुमारप्पा जिसे सर्विस इकॉनोमी कहते हैं, ऐसा लगता है उसकी प्रेरणा यहाँ से ही है (Kumarappa, 1957)।

ऐसे में हमारे सामने दो सैद्धांतिक प्रश्न खड़े होते हैं। पहला, क्या व्यय आय का आधार होती है? दूसरा, 'देने के लिए' उत्पादन की प्रेरणा कहाँ से मिलती है?

4.1 क्या व्यय, आय का आधार होता है?

प्रायः ऐसा मानते हैं कि हमारी आय हमारे व्यय का आधार है – income is the cause of expenditure। हमारा प्रस्ताव है, पारम्परिक अर्थ–व्यवस्था में व्यय को आधार माना गया है – expenditure is the cause of income। इसे हम दो स्तर पर देख सकते हैं।

पहला, प्रकृति का व्यय मानव को मूल आय के रूप में उपलब्ध होता है। जैसे, एक पेड़ का व्यय उसके फल, फूल, पत्ती इत्यादि हैं जो मानव की आय होते हैं। जो फल पक कर नीचे गिर जाता है, या जो लकड़ी टूट कर नीचे गिर जाती है वह हमारे उपयोग की वस्तु बनती हैं। ऐसे ही पशु का व्यय – गोबर, मूत्र, बाल, दूध और पशु-बल इत्यादि हमारी आय बनते हैं। फिर, धरती का व्यय हमें फ़सल और सतही खनिज के रूप में मिलता है; धरती की छाती फाड़ खनिज निकालना सही नहीं माना गया है। प्रकृति का व्यय अर्थ-व्यवस्था का आधार होता है।

दूसरा, जातियों के आपसी संबंध दायित्व आधारित थे - एक जाति का व्यय दूसरी जाति की आय बनता था। जैसे, किसानों का व्यय कारीगर जातियों की आय थी और कारीगरों के व्यय से किसान और अन्य जातियों की आय थी। इन सभी के व्यय से कलाकार जातियों की आय थी और कलाकारों के व्यय से अन्य जातियों की आय ज्ञान रूप में होती थी। इसका बहुत सुंदर विवरण रवींद्र शर्मा किया करते थे। वाइसर के काम में भी इसकी झलक मिलती है।

भारतीय अनुभव से हमें पता है कि जब हर कोई अपने दायित्व के अनुसार व्यय करता हो, तब हर किसी की आय सुनिश्चित हो जाती है। इस पक्ष का अध्ययन ठीक से करने की आवश्यकता है जहाँ इसकी बारीकियों को समझा जा सके।

4.2 'देने के लिए' उत्पादन की प्रेरणा क्या है?

बेचने के लिए उत्पादन की प्रेरणा लाभ होता है। जिस पर आधुनिक अर्थ–व्यवस्था टिकी है। लेकिन देने के लिए किया गया उत्पादन की प्रेरणा क्या होगी? यह महत्वपूर्ण प्रश्न है।

पारम्परिक ग्राम व्यवस्था को जजमानी व्यवस्था भी कहा गया है जिसका सैधान्तिक आधार यज्ञ है। यज्ञ

को भारतीय सभ्यता का आधार स्तम्भ मान सकते हैं। यज्ञ में आहुति देने की प्राथमिकता होती है; परिवार का श्रेष्ठ उत्पादन आहुति देने के प्रयोग में आता है। श्रेष्ठ आहुति देना कर्तव्य (duty) माना गया है। पूर्व मीमांसक मानते हैं कि कर्तव्य की स्वायत्तता होती है – duty for the sake of duty (Chatterjee, S. & Datta, D. (2007))। कर्तव्य इच्छापूर्ति के लिए नहीं किए जाते, हालाँकि सृष्टि का नियम है कि कर्तव्य का उचित फल मिलता ही है।

पारम्परिक ग्राम व्यवस्था इस सैद्धांतिक विचार पर टिकी है; प्रत्येक जाति कौशल अपने काम को यज्ञ के समान मानती थी। अपने जजमान की आवश्यकता की पूर्ति को अपना कर्तव्य समझती थी। व्यय-प्रधान अर्थ-व्यवस्था कर्तव्य प्रधान होती है। शायद गांधीवादी अर्थशास्त्री कुमारप्पा की "सर्विस इकोनोमी", उसका आधार कर्तव्य की प्रेरणा में होगा।

देने के लिए उत्पादन की प्रेरणा कर्तव्य निष्ठा से ही आती है और कर्तव्य का अपना स्वायत्त औचित्य है।

5. निष्कर्ष एवं भावी चिंतन

"सस्टेनेबल डिवेलपमेंट" के स्थायी प्रयास के लिए एक वैकल्पिक पैराडाइम की अवधारणा करना आवश्यक है। पारम्परिक भारतीय व्यवस्थाओं की सैद्धांतिक समझ से ऐसा प्रयास सम्भव हो सकता है। इस शोधपत्र में हमने 'कर्तव्य मूलक पैराडाइम' का प्रस्ताव रखा है, जिसका आधार कर्तव्य की स्वायत्त पहचान है, जिसके लिए संबंध की स्वायत्त पहचान आवश्यक होगी। परिणामस्वरूप उत्पादन और विनिमय का प्रयोजन अधिक से अधिक मुनाफ़ा न हो कर, अपनी ज़िम्मेदारी और भागीदारी की पूर्ति बन जाता है।

भविष्य में कुछ मुद्दों पर सैद्धांतिक अनुसंधान करना महत्वपूर्ण रहेगा – 1. मानवीय संबंध का सैद्धांतिक आधार (जिसके लिए मध्यस्थ-दर्शन का प्रस्ताव उपयोगी लगता है), 2. संबंध के आधीन सांस्कृतिक विविधता के आधार की पहचान (इसके लिए समाज और कला के अंतर-संबंध को समझना उपयोगी रहेगा) और 3. उत्पादन प्रक्रिया में अवशेष पदार्थों के पुनःचक्रण पाचन के लिए सामाजिक व्यवहार की पहचान (इसके लिए पारम्परिक ग्राम व्यवस्था को देखना उपयोगी रहेगा)।

आभार

लेखक इस शोधपत्र की पृष्ठभूमि के लिए प्रो. नवज्योति सिंह एवं प्रो. ऋषिराज गौड़ के साथ हुए विचार-विमर्श के प्रति आभार प्रकट करते हैं।

संदर्भ

1. Adam Smith (1965) *Wealth of Nations*, 1965 edition, pp. 127, 647, 789 (taken from Dharampal "Erosion of Norms" in *Rediscovering India* p.35 SIDH, Mussoorie 2022).
2. Arendt, Hannah (1958) "*The Human Condition*" University of Chicago Press, p.322.
3. Canovan, M. (1998) Introduction in *The Human Condition* (auth. Hannah Arendt) p. xi, University of Chicago Press (originally published in 1958).
4. Chatterjee, S. & Datta, D. (2007) "An Introduction to Indian Philosophy" p.18 Rupa Publications India Pvt. Ltd., New Delhi 2007.
5. Dharampal (2000) "Indian Science and Technology in Eighteenth Century" p. 19-21 (taken from Heyne *Tracts on India,* p.363, 1814), Other India Press, Goa and SIDH, Mussoorie (originally published by Impex India, 1971).
6. Dharampal (2000) "Some Aspects of Earlier Indian Society and Polity" in E*ssays on Tradition, Freedom and Recovery* p.28. OIP (Goa) and SIDH (Mussoorie) 2000 (The essay is a compilation of three lectures delivered by author on Jan 4-6, 1986 at Pune. These were later published in *The Quest* (nos. 56, 57, 58) and published in *Jansatta 12* parts from March-April 1986. Later it was translated in Tamil, Marathi and Malayalam for different regional publications).
7. Dutt, R. C. (1960) "The Economic History of India" Vol. I & II" Publications Division,

Ministry of Information and Broadcasting, Govt. of India.

8. F. Pelsaert *Jehangir's* India translated and edited by W.H. Moreland, 1925, p.60. (taken from Dharampal. "Erosion of Norms and Dignity in Modern India" in *Rediscovering India,* p. 39, SIDH 2022).
9. Gandhi. (1916) Speech Given at Muir College. CWMG, Vol. 15, p. 272-80.
10. Hale, Ken. *"On endangered languages and the importance of linguistic diversity". Endangered Languages: Current issues and future prospects* p. 192 Ed. Lenore A. Grenoble and Lindsay J. Whaley Cambridge University Press 1999.
11. Huntington, S. (1996) "The Clash of Civilizations and the Remaking of World Order" pp. 86-7, Touchstone, New York 1996.
12. Kumarappa, J.C. (1957) "Economy of Permanance: A Quest for Social Order Based on Non-violence" pp. 28-29 Sarva Seva Sangh Prakashan, Varanasi 1957 (Originally published in 1945).
13. Meadows Donella H., Meadows Dennis H., Randers. J, Behrens III. William W. "The Limits to Growth: A Report for THE CLUB OF ROME'S Project on the Predicament of Mankind" Universe Books, NY 1972.
14. Orr, David W. *"Diversity."* *Conservation Biology* 17, no. 4 (2003): 948-51. http://www.jstor.org/stable/3588848.
15. Patriotic and People Oriented Science and Technology (PPST) Bulletin, 1994 (proceedings of "Traditional Science Congress", Mumbai 1993) https://ppst-bulletins22.blogspot.com/2021/02/indian-science-and-technology-in.html
16. Pogula, Ankit (2023) Documentary Film "Herd-Walk (Bhedchaal)", Tuning Fork Films; screened at 18th Mumbai International Film Festival, 16th International Documentary and Short Film Festival of Kerala and All Living Things Environment Film Festival.
17. Read, Alexander (1779) "James Stuart Papers: A Description of Life in Hyderabad" in National Library of Scotland: MS8326 (taken from taken from Dharampal. "Erosion of Norms and Dignity in Modern India" in *Rediscovering India,* p. 39, SIDH 2022).
18. Schumacher, E. F.(1973) "Small is Beautiful: A Study of Economics as if People Mattered" Vintage Books, London (first published in 1973 by Blond & Briggs Ltd.) p. 17.
19. Satya, H. (2020a) "Tool Based Technology" (ch.4.4.7) in *Towards Revitalizing Diversity: A Study of Traditional Jajmāni System in India.* Doctoral Thesis. IIIT-Hyderabad.
20. Satya, H. (2020b) *"A Study of Kurbā* Community in Belgaum Region" (ch.3.2) in *Towards Revitalizing Diversity: A Study of Traditional Jajmāni System in India.* Doctoral Thesis. IIIT-Hyderabad.
21. Satya, Harsh, and Babu Gopal (2023). "Towards an Indic conceptual framework of sustainability: yajña, saha-astitva and the jajmāni paradigm." International Conference on Sustainability: An Ancient India Approach organized by MCHV, IIM Calcutta, held during 11 - 12 August 2023.
22. Sundarlal (1929) (in Hindi) "Bharat Mein Angrezi Raaj" Vol. I & II Publication Division, Govt. of India.
23. Uzramma. (2008) https://globalinch.org/article/natural-dyeing-in-india-past-and-future/
24. Wasmer, Martina "Public Debates and Public Opinion on Multiculturalism in Germany." *In Challenging Multiculturalism: European Models of Diversity,* edited by Taras Raymond, 163-89. Edinburgh: Edinburgh University Press, 2013. http://www.jstor.org/stable/10.3366/j.ctt20q22fw.14.
25. Wiser, William H. (1936a) "The Hindu Jajmani System: A Socio-Economic System Interrelating Members of a

Hindu Village Community in Services", pp.61-129, Lucknow Publishing House, Lucknow.
26. Wiser, William H. (1936b) "The Hindu Jajmani System: A Socio-Economic System Interrelating Members of a Hindu Village Community in Services", p.11, Lucknow Publishing House, Lucknow.
27. Wiser, William H. (1936c) "The Hindu Jajmani System: A Socio-Economic System Interrelating Members of a Hindu Village Community in Services", pp.5-6, Lucknow Publishing House, Lucknow.
28. Wiser, William H. (1936d) "The Hindu Jajmani System: A Socio-Economic System Interrelating Members of a Hindu Village Community in Services", pp.62-94 Lucknow Publishing House, Lucknow.
29. Wiser, William H. (1936e) "The Hindu Jajmani System: A Socio-Economic System Interrelating Members of a Hindu Village Community in Services", pp. 95-118 Lucknow Publishing House, Lucknow.

विवेक सम्मत विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अवधारणा*

प्रो. सन्तोष सत्या[1]
प्रो. ऋषिराज गौड़[2]

[1]ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
[2] एन.आर.सी.वी.ई.ई.
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

1. प्रस्तावना

आज पूरे विश्व में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का वर्चस्व है। इनके द्वारा अनेकानेक उपलब्धियॉं मानव जाति को प्राप्त हुई हैं तथा हमारी जीवनशैली गहन रूप से प्रभावित हुई है। सारा प्रयत्न तो मानव जाति के सुख-समृद्धि निरंतर तथा चिरस्थायी एवं लोकव्यापी सुख-समृद्धि की अपेक्षा में है। इस उद्देश्य में हम कितने सफल हो पाते हैं यह व्यापक समीक्षा का विषय है। विशेषकर वर्तमान संदर्भ में, जबकि विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का इतने व्यापक स्तर पर विकास-प्रसार हुआ है और इसी परिवर्तन के फलस्वरूप अनेकानेक भीषण समस्याओं से मानव जाति ग्रसित हो गई है और एक ऐसे पड़ाव पर पहुंच गई है, जहां से न तो पीछे लौटना संभव है अथवा वांछनीय लगता है और न ही इस दिशा में आगे बढ़ना। बल्कि वर्तमान विकास की शैली मानव एवं पृथ्वी पर अन्य सभी जीव जन्तुओं के अस्तित्व के लिए भयंकर संकट बनती दिख रही है।

वर्तमान विकास शैली के फलस्वरूप हमारे समाज व पर्यावरण में गहराती हुई ज्वलंत समस्याओं जैसे जलवायु परिवर्तन, ऊर्जा एवं अन्य सभी संसाधनों का क्षरण, मानव का गिरता स्वास्थ्य स्तर, समाज में बढ़ता वैमनस्य/घटती समरसता व आपसी विश्वास, भोज्य पदार्थों की घटती गुणवत्ता व सुरक्षा, पर्यावरण से जुड़े मुद्दे, परंपरागत प्रमाणिक तकनीकी की उपेक्षा से घटते रोजगार आदि ने विश्व स्तर पर विद्या मनीषियों, विचारकों तथा वैज्ञानिकों व तकनीकी विशेषज्ञों तथा नीति निर्धारकों को भी विकल्प तलाशनें के लिए बाध्य किया है, प्रेरित किया है। यह तो बिल्कुल स्पष्ट ही है कि इन सब समस्याओं का मूल कारण मानव की वर्तमान समझ तथा उसके अनुरूप जीवन शैली ही है। अब सवाल उठता है कि क्या मानव जीवन शैली का वर्तमान स्वरूप बदला नहीं जा सकता है? यदि हाँ तो उसको प्रारम्भ करने का बिन्दु कहां स्थित है? मानव कल्पनाशीलता से सम्पन्न है तथा स्वतंत्रता का आनन्द लेते हुए इस धरती पर सुख, शांति व समृद्धिपूर्वक जीना उसकी नैसर्गिक चाहत है। इसके समाधान के लिए अनेक प्रकार से विचारकों, बुद्धिजीवियों, समाज सेवी महानुभावों की कल्पनायें दौड़ रही हैं तथा भाँति-भाँति के उपाय सुझाये गए हैं। निश्चित रूप से हमें विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास तो चाहिए ही, पर महत्वपूर्ण प्रश्न यह बन गया है कि किस प्रकार की विज्ञान व प्रौद्योगिकी हो जो वस्तुतः निरंतर सुख-समृद्धि की हमारी मौलिक आकांक्षा को सुनिश्चित कर सके तथा चिरस्थायी विकास की दिशा निर्धारित कर सके।

यह तो हम जानते हैं कि पूरे अस्तित्व में मनुष्य ही ज्ञानावस्था की इकाई है अर्थात सही को समझना, सही का ज्ञान प्राप्त करना तथा उसके अनुरूप जीवन शैली अपना कर स्वयं भी तृप्त होना तथा सभी के सुख-समृद्धि में सहायक होना यही मनुष्य का मौलिक स्वभाव है। यही समझदारी को

*(पूर्व प्रकाशित 'जिज्ञासा'-2021)

प्रमाणित करने की भी विधि है जो प्रत्येक मानव का तृप्ति बिन्दु है, गंतव्य है। अपने बारे में तथा अपने से लेकर पूरे अस्तित्व के बारे में सही जानकारी ही ज्ञान का क्षेत्र है। सही ज्ञान से ही विवेक उत्पन्न होता है अर्थात जीने का प्रयोजन स्पष्ट होता है। मानवीय लक्ष्य एवं आचरण स्पष्ट होता है। वास्तव में ज्ञान एवं विवेक के प्रकाश में ही प्रकृति की भिन्न-भिन्न इकाईयों के गुण-धर्म की जानकारी तथा परस्पर अंतः क्रियाओं की समझ विज्ञान के दायरे में आती हैं, जो प्रौद्योगिकी की दिशा एवं स्वरूप निर्धारित करता है। इस प्रकार मनुष्य की जीवन शैली व टैक्नोलोजी विकसित करने के लिए सामाजिक व्यवस्था के ढाँचे का निर्माण होता है।

2. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी- आधुनिक स्वरूप

'ज्ञान' के आधार पर जीवन शैली निर्धारित करने के लिए सम्पूर्ण प्रकृति की व्याख्या करनी पड़ती है, प्रकृति के साथ अपने सम्बन्धों को समझना, अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करना तथा प्रकृति से अपने जीने के लिए साधन जुटाने पड़ते हैं। प्रकृति की व्याख्या ही विज्ञान है, प्रकृति से साधन जुटाने और उनका प्रयोग करने की विधि ही प्रौद्योगिकी है। परन्तु इसके लिए 'स्वयं' को एवं मानव-मानव संबंध को सही रूप से समझना तथा मानव–प्रकृति संबंध के वास्तविक स्वरूप को समझना अनिवार्य है तभी विवेक सम्मत विज्ञान एवं तकनीकी का विकास हो सकता है।

प्रचलित आधुनिक सिस्टम में केवल किसी खास प्रकार की मान्यताओं (विद्याओं, सूचना.....) को ही विज्ञान व प्रौद्योगिकी कहा जाता है। स्वाभाविक है कि यह कथित विज्ञान व प्रौद्योगिकी प्रकृति के साथ सम्बन्धों को, मानव-मानव एवं मानव-समाज के सम्बन्धों तथा मनुष्य के 'स्वयं' के साथ सम्बन्धों को नजर अन्दाज/नकार कर (overlook) ही विकसित होती है। यह तथ्य साहित्य (dictionary, encyclo-pedia, आदि) में वर्णित टैक्नोलोजी की परिभाषा से नितान्त स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि परिभाषा में प्रकृति का जिक्र ही नहीं है, समाज एवं मनुष्य के स्वयं के विकास का कोई प्रतिबिंब भी नहीं है। इसी प्रकार दक्षता (Efficiency) की परिभाषा व सूत्र अपूर्ण पाई गयी हैं। वास्तव में आधुनिक विज्ञान व टैक्नोलोजी, केन्द्रीकृत व्यवस्था, बाजारवाद के माध्यम से व्यापार (टैक्नोलोजीकल बाजारवाद), प्रकृति पर विजय पाने की लालसा, युद्ध द्वारा विश्व में अपना आधिपत्य जमाना, आदि की ही संपोषक है। यह सब इसलिए है कि जड़ पदार्थ (physical materials) को ही ज्ञान का केन्द्र माना जाता है, जड़ यन्त्रों द्वारा ही इसका परीक्षण किया जाता है और उसी को प्रमाण मान लिया जाता है। चेतन का अध्ययन एवं समझ इसमें उपेक्षित रहती है।

वर्तमान में अनिश्चितता (uncertainty) को ही सिद्धान्त रूप से स्वीकार कर लिया गया है। दुनिया में सारी योजनायें (जीवन शैली से लेकर पर्यावरण तकनीकी विकास, आर्थिक विकास.....) इसी के आधार पर बनाई गई है/ जा रही है। आधुनिक विज्ञान/दृष्टिकोण के अनुसार विज्ञान अर्थात प्रकृति की व्याख्या अस्थिर (unstable) है। मनुष्य को कभी भी समझ में आने वाली नहीं है, अतः निरन्तर अनुसंधान के आधार पर विज्ञान का स्वरूप बदलता रहता है। विज्ञान में जिसको कल सही माना जाता था, आज उसी को गलत मान लिया जाता है तथा यह भी घोषणा रहती है कि आने वाले दिनों में नई-नई खोज होगी जिनके आधार पर आज कल की वैज्ञानिक बातें भविष्य में गलत सिद्ध हो सकती हैं। इस प्रकार विज्ञान का स्वरूप कभी स्थिर नहीं हो पाता।

इसी अनुक्रम में मनुष्यों के जीने का कार्यक्रम तथा टैक्नोलोजी भी अस्थिर बन जाती है। इस विचारधारा में प्रकृति/ईश्वर का स्थान बाजार ने ले लिया है। व्यापार, शोषण तथा संघर्ष परस्पर अविभाज्य से हो गये हैं, जो अन्ततः मनुष्यों के जीने को दूभर बना रहे हैं। संघर्ष ही जीवन शैली बन जाती हैं। इसी प्रकार वस्तु केन्द्रित अनिश्चयात्मक ज्ञान में प्रकृति के साथ संघर्ष करने की, उस पर विजय पाने की तथा उसका भोग करने की बात है। परिणामस्वरूप इस paradigm/विकास मॉडल में भोगोन्मादी और युद्धोन्मादी टैक्नोलोजी विकसित होती हैं।

3. ज्ञान-विवेक- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी श्रृंखला

वास्तव में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को मानव कल्याण के साथ-साथ अन्य जीव प्रजातियों (species) के लिए उपयुक्त होने के लिए विवेक सम्मत होना

अनिवार्य है। ज्ञान तथा विवेक के अभाव में भी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आकर्षक हो सकती है लेकिन निश्चित रूप से सदुपयोगी नहीं बन सकती है। बल्कि वास्तव में यह अंततः मानव के लिए विनाशकारी तथा प्रकृति के लिए भी विरोधी होती जायेगी। आज हम इसी दुःष्चक्र में अपने को फंसा हुआ पाते हैं। सुख और समृद्धि की सही समझ के अभाव में वर्तमान में हमने अधिकाधिक सुविधा, भोग तथा धन संचय को ही सुख और समृद्धि का स्रोत मान लिया है। इस प्रवृत्ति के व्यापक स्तर पर प्रभावी होने से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी भोगोन्मादी तथा लाभोन्मादी हो गई हैं। इसीलिए इनसे अनेकानेक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इस स्थिति का निराकरण तभी हो सकता है जब विवेकशीलता को विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विकसित करने की प्रकिया में आधारशिला बनाया जाये। इसके लिए पहला आवश्यक चरण यही है कि मानव ज्ञान एवं विवेक से पुष्ट हो। शिक्षा में समझदारी विकसित करने तथा उसके अनुसार जीने में निष्ठा जागृत करने का प्रयास हो। उसके बाद समझदारी के प्रकाश में, विवेक के प्रकाश में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की समीक्षा हो तथा उनमें वांछनीय संशोधन हो, वैकल्पिक अनुसंधान तथा विकास हो।

4. विवेक सम्मत विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की दिशा में कुछ अभिनव प्रयास

सौभाग्यवश पिछले लगभग 3 दशकों में वैज्ञानिकों, मनीषियों व बुद्धिजीवियों ने उपरोक्त विषय पर गंभीरता से विचार करके नया चिन्तन-मनन विकसित किया तथा उसके आधार पर विज्ञान व प्रौद्योगिकी का सही स्वरूप समझ कर जीवन शैली विकसित करने के प्रयोग भी चल रहे हैं। उदाहरण के रूप में-अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान (सह अस्तित्व सिद्धांन्त) प्राकृतिक इंजीनियरी (प्रकृति की engineering व architecture से ज्ञान प्राप्ति) Gaia सिद्धान्त (जिसके मूल में Homeostatic समायी है), डॉ. Larry Dossey का Consciousness पर आधारित स्वास्थ्य टैक्नोलोजी सिस्टम, जापान में ग्रीन स्वास्थ्य clinic, शुमाकर कालेज, लन्दन (U.K.) विश्व में पहली Holistic Science में M.Sc. आदि उद्घृत किए जा सकते हैं। इनमें 'विवेकशीलता' को पूरी Technological व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान देने की आवश्यकता परिलक्षित होती है।

डॉ. James Lovelock के Gaia सिद्धांत में सम्बन्धों की व्याख्या प्रकृति तक सीमित है, जबकि सहअस्तित्व का सिद्धान्त प्रकृति के अलावा मानव-मानव सम्बन्ध, मानव-समाज सम्बन्ध तथा मानव का स्वयं से सम्बन्धों की पूर्ण व्याख्या करता है ताकि विकास के लिए holistic व्यवस्था ईजाद की जा सके। हालांकि वर्तमान आधुनिक विद्यार्थियों/वैज्ञानिकों को विवेक सम्मत विज्ञान व प्रौद्योगिकी का स्वरूप समझाने में Gaia Theory अत्यन्त सहायक है तथा Natural Engg. में दर्शायी गयी प्रकृति की अभिनव (innovative) क्षमता उनका हृदय झकझोर देती है। Natural Engg. System के उदाहरण IIT दिल्ली के B.Tech. विद्यार्थियों को बहुत अपील करते हैं इसके बाद वे विवेक सम्मत विज्ञान व टैक्नोलोजी को भली प्रकार समझने की चेष्टा करते हैं।

5. अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान

पूज्य नागराज जी ने इस चिन्तन शैली को उजागर किया है। इसका नाम उन्होंने सह अस्तित्ववाद (मध्यस्थ दर्शन) रखा है। इसमें मानव के चैतन्य पक्ष को 'जीवन' नाम दिया है। माननीय लक्ष्य-समाधान एवं समृद्धि तथा 'जीवन' को गठनपूर्ण चैतन्य परमाणु के रूप मे पहचाना गया है, जो अक्षय शक्तियों एवं अक्षय बलों से सम्पन्न है। मानव 'जीवन' अध्ययनशील है। यह सम्पूर्ण अस्तित्व में जो कुछ भी है उसका अध्ययन करने की क्षमता रखता है। 'जीवन अर्थात स्वयं का भी अध्ययन कर सकता है। स्वयं का अध्ययन करने के लिए 'जीवन विद्या' को भी मध्यस्थ दर्शन में पहचान लिया गया है। 'जीवन विद्या' के प्रकाश में मनुष्यों को मानवीय व्यवस्था का बोध हो जाता है। मानवीय व्यवस्था ऐसी व्यवस्था है जिसमें चिराकांक्षित प्राकृतिक समृद्धि, अखण्ड सामाजिकता, बौद्धिक समाधान तथा प्रमाणिकतापूर्ण आचरण की सम्भावना समीचीन है। इस संदर्भ में आई.आई.टी. दिल्ली में कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग –मूल्य शिक्षा के रूप में तथा उपयुक्त प्रौद्योगिकी सिस्टम विकसित करने की दिशा में हुए हैं।

6. उपसंहार

सर्वविदित है कि ज्ञान पिपासा/जिज्ञासा सभी मनुष्यों में एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मानव लक्ष्य के पूर्ण स्वरूप को समझकर ज्ञान का विकास समाज में समरसता व समृद्धि लाता है। लेकिन इस 'समझ' के बिना जिज्ञासा तृप्ति भटकाव की ओर ले जाती है। वर्तमान में विश्व स्तर पर फैली विभीषिकाएं-आर्थिक संकट, कुछ देशों में भुखमरी, भयग्रस्त समाज (terrorism), मनोवैज्ञानिक रोग, चरमराती परिवार व्यवस्था, बढ़ता अकेलापन आदि के रूप में उजागर हो रही है, यह स्थिति स्पष्ट संकेत देती है कि विकास के आधुनिक मॉडल में आगे रास्ता बन्द है। कारण है कि मनुष्य के 'चैतन्य पक्ष' की आवश्यकताओं की विकास मॉडल में उपेक्षा की गयी है जिससे टैक्नोलोजी विकसित करने के प्रयास दिशा विहीन हो गए हैं। यह शोधपत्र इस महत्वपूर्ण उपेक्षित तथ्य की ओर ध्यान आकर्षण करके इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। यह नया paradigm अस्तित्व में विभिन्न स्तरों पर बहते सम्बन्धों (मानव-मानव, मानव-प्रकृति, मानव-समाज, मानव-स्वयं.....) व उनमें समाये मूल्यों (values) के महत्व को ध्यान में रखकर स्वाभाविक रूप से सभी के लिए विवेक जागृति की सम्भावना दर्शाता है। निःसंदेह इस अवधारण का शिक्षा व्यवस्था में समावेश एक 'नयी दृष्टि' का उदय करेगा जिससे विवेक सम्मत विज्ञान व प्रौद्योगिकी विकसित करके सुखी व समृद्ध समाज की स्थापना व निरन्तरता कायम रह सकेगी। इस दिशा में किए जा रहे अभिनव प्रयोग व प्रयास आज की विकट परिस्थिति में आशा की किरण है तथा ऊर्जा व उत्साह का संचार करते हैं।

आभार

यह शोध पत्र मुख्य रूप से पूज्यनीय नागराज जी एवं श्रद्धेय डॉ. यशपाल सत्य जी के चिन्तन-मनन पर आधारित है। समय के साथ-साथ प्रकाशित साहित्य में वर्णित कुछ अन्य चिन्तन शैली का अध्ययन करके व्यापक समझ बनी। RDL 340 कोर्स के मेधावी B. Tech विद्यार्थियों के साथ Term Paper के रूप में अध्ययन से नये आयाम जुड़ते गये। विभिन्न अवसरों पर इस विषय पर पूज्य नागराज जी, प्रो. गणेश बागरिया, डॉ. रणसिंह आर्य, हर्ष सत्या आदि के साथ चर्चा भी इसमें परिलक्षित हैं। लेखक सभी के सहयोग के लिए हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

संदर्भ

1. A. Nagraj, 'Jeevan Vidya - Ek Parichay' Divya Path Sansthan, Amarkantak.
2. R.A. Mashelkar, "Emergence of Natural Engg" Employment News (2002).
3. Larry Dossey "Space, Time & Medicine (Health and Consciousness)" (1982).
4. Holistic Science (M.Sc.), Schumacher College London (2006).
5. Hind Swarajaya, Gandhiji (1908).
6. Satish kumar "You are Therefore I am" Viveka Foundation (2002).
7. Dharmpal, "Bhartiya Chitta Manas va Kaal", Rashtrotthana Sahitya(2021).
8. James Lovelock, "Gaia-A New Look at Life on Earth" (1979).

प्राकृतिक इंजीनियरी का उदय/प्रादुर्भाव*

प्रो. सन्तोष सत्या

ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

1. पृष्ठभूमि

डॉ. रघुनाथ अनन्त माशेलकर का एक खूबसूरत व सारगर्भित लेख (Emergence of Natural Engineering) पिछले 3-4 वर्षों से आई.आई.टी. दिल्ली के इंजीनियरी विद्यार्थियों को एक पाठ्यक्रम RDE 340 "Technology and Community Development" के अन्तर्गत पढ़ने के लिये दिया जाता रहा है। यह लेख विद्यार्थियों को मंत्र मुग्ध कर देता है तथा वे प्राकृतिक इंजीनियरी के अन्य सुन्दर उदाहरण खोज कर लाते हैं। इस प्रकार डॉ. माशेलर के शोध पत्र की प्रेरणा से अभी तक इस विषय पर दो रिपोर्ट तैयार की गयी है। आशा है कि 'जिज्ञासा' के अगले अंक में इस विषयवस्तु पर अधिक जानकारी प्रकाशित की जाएगी।

2. विज्ञान एवं इंजीनियरी की समग्र समझ

जब हम 'इंजीनियर' शब्द की ओर देखते हैं तो पाते है कि यह 'ingenieur' नामक फ्रेंच शब्द से उपजा है। यह शब्द वास्तव में निष्ठावान (ingenous) होने के अर्थ में है। इसका अभिप्राय है कि इंजीनियर निष्ठावान होता ही है, ऐसा माना जाता है और उसे कुछ ऐसा कार्य करना होता है जो अभिनव हो और जिसमें सृजनात्मक शक्ति समाहित हो।

हमेशा हमारे दिमाग में विज्ञान, इंजीनियरी, टैक्नोलोजी, मूल अनुसन्धान (basic research) अनुसंधान (applied) अनुसंधान आदि को लेकर भ्रम बना रहता है और हम इन मुद्दों पर चर्चा व विचार -विमर्श करते रहते हैं। इसको भली प्रकार समझने के लिये मैंने साहित्य में वर्णित वैज्ञानिक तथा इंजीनियर की विभिन्न परिभाषाओं का अवलोकन किया और उनका विश्लेषण किया। इस आधार पर स्पष्ट हुआ कि वैज्ञानिक अस्तित्व में जैसा कुछ है उसका अन्वेषण करता है जबकि इंजीनियर उसे सृजित करता है जो कभी रहा ही नहीं।

यदि हम विज्ञान विशेषकर आधुनिक विज्ञान के उदय/प्रादुर्भाव (emergence) का अवलोकन करें तो पाते हैं कि यह केवल 200 साल पुरानी है लेकिन यदि इंजीनियरी की ओर देखें तो हमें यह जानकर गर्व होता है कि यह लगभग 30000 (तीस हजार) वर्ष पुरानी है। इंजीनियरी लगभग उस काल में प्रारम्भ हुई जब आदि मानव ने लकड़ी के लट्ठे व रस्सी से लट्ठों का तैरता हुआ बेड़ा (rafts) बनाया तथा शीघ्र ही रस्सी से खम्भे (masta) व पाल (sail) के द्वारा पवन ऊर्जा का दोहन करना सीख लिया। यहां प्रचालन (operative) शब्द दोहन करना है।

अतः मैं सोचती हूँ कि इंजीनियर का मुख्य कार्य (key job) सर्वहित के लिये दोहन (harness) करना है, प्राकृतिक शक्तियों (natural force)

*(पूर्व प्रकाशित 'जिज्ञासा'-2010)

जैसे पवन, समुद्र, मिट्टी, लहरें (tide) इत्यादि का दोहन।

आइये अब हम उन कोर्स (पाठ्यक्रम) का अवलोकन करें जिनका सामान्यतया इंजीनियर अध्ययन करते हैं। ये विषय है - भौतिक शास्त्र (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry), तथा गणित (Mathematics) लेकिन वे कभी भी जैव शास्त्र (Biology) को साथ नहीं पढ़ते हैं। प्रश्न है कि हम ऐसा क्यों करते हैं? प्रकृति लगभग 800 मिलियन वर्षों से अत्यधिक सृजनात्मक (creative) एवं अभिनव (innovative) जैव शास्त्र का प्रयोग करती रही है। इस प्राकृतिक इंजीनियरी की खूबसूरत प्रक्रिया को हम ईमानदारी (scrupulously) से अपने इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम से बाहर कर देते हैं। मुझे एक जैव इंजीनियर का एक वक्तव्य याद है। वह 'ईश्वर-स्वयं एक महान इंजीनियर' द्वारा डिजाइन किये गये दो कानों के बारे में बता रहे थे। ऐसा महान इंजीनियर हमेशा ऐसी वस्तुयें डिजाइन करता है जो बहुउद्देशीय (multipurpose) है। कोई भी कार्य ऐसी वस्तु जो हमारे अस्तित्व का हिस्सा है, उसके बहुउद्देश्य होते है। चाहे वह मुख हो या कान उसका कभी भी एक ही कार्य (function) नहीं होता। यही अभिनव (innovation) का कोर मूल आधार है।

हैल्महोल्टज के अनुसार कान, अनुनाद (resonators) तन्त्र का क्रदय है जो जटिल आवाजों का विश्लेषण करता है। फिर यह केबल (cable) के रूप में श्रवण नाड़ी (auditory nerve) सहित टेलीफोन बना। यह मस्तिष्क में छिपा तरंग विश्लेषक (frequency analyzer) भी था। अभी हाल ही में इसकी अन्य अनेक अद्भुत विशेषताओं (novelties) जैसे प्रतिबाधा मिलान (impedance matching), तरंग विश्लेषक (frequency analyser) एवं स्वतः प्राप्त नियंत्रक (automotive gain control) के बारे में जानकारी मिली। मैं आशा करता हूं कि आगे आप अपने कान को अनेक भिन्न नजरियों के साथ निहारेंगे। यही प्राकृतिक इंजीनियरी की खूबसूरती है।

आइये अब मस्तिष्क (brain) का अवलोकन करें। प्रारम्भ में मस्तिष्क को एक टेलीफोन एक्सचेंज के रूप में समझा गया, तत्पश्चात् एक इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर तथा हाल में होलोग्राफी भंडारण तंत्र (Holographie data storing system) माना गया। अतः विश्वास ही नहीं होता कि किस तरह से प्राकृतिक इंजीनियरी प्रचालित होती है। परन्तु साथ ही हम जो करते हैं-वह है कि हम इन प्रकृति की अद्भुत नवप्रवर्तनों (innovations) को अपने इंजीनियरी विद्यार्थियों से दूर रखते हैं।

'प्रकृति अदभुत है' प्राकृतिक इंजीनियरी के अनेक उदाहरण अस्तित्व में मौजूद है। सर्पों का उदाहरण लीजिये, उनके पास अवरक्त संसूचक (Infrared detectors) है जिससे उनमें वायुमंडलीय तापमान से 0.001oC का अन्तर नापने की क्षमता है। इसी के द्वारा वे मानव (homosapiens) के शरीर के विकिरण (radiation) मात्र से उनकी उपस्थिति की पहचान (detect) कर सकते हैं। कुछ अन्य इसी प्रकार के उदाहरण हैं –(i) भटके हुए फोटान (stray photon) की दिशा ज्ञात करने में फंगस की भूमिका (ii) गुबरैले (Beetle) को जब कोई परेशान करता है तो वह माइक्रो सेकेण्ड में उस पर थूक देती है, जिसका तापक्रम 120C होता है। यह तो घोर आश्चर्य प्रतीत होता है। इस प्रक्रिया को समझने पर पता चला कि इस विशेष गुबरैले (बीटल) के पास एक विशेष एन्जाइम मौजूद है जिसे गुबरैला माइक्रो सेकेण्ड में मिलाकर गर्म फुहारा (hot spray) बना लेती है। (iii) एक दुर्लभ मछली (बिना ऑक्सीजन के रहने वाली मछली)-गोल्ड फिश की यह प्रजाति कूसियन कार्प महीनों तक बिना ऑक्सीजन के रह सकती है। अनुसंधानकर्ताओं ने पाया कि यह दुर्लभ मछली अपने पंखों की बनावट को बदल सकती है ताकि वह ऑक्सीजन की कमी का शिकार होने से बच सके। इसके अलावा इसका रक्त किसी भी अन्य कशेरूकी जीव (Vertebrate) की तुलना में अधिक ऑक्सीजन रख सकता है। जब ऑक्सीजन की आपूर्ति कम या बंद हो जाती है तो यह प्रशांतक (tranquiliser) बनाती है और एल्कोहल पैदा करती है। यही क्रियाविधि (mechanism) उसे महीनों तक बिना ऑक्सीजन के सामान्य गतिविधियों के साथ जीवित रखती है।(iv) चमगादड़ (Bat) की ऐसी प्रजाति जिसमें चुम्बकीय कुतुबनुमा (magnetic) अन्तर्निहित (inbuilt) है जिससे यह लम्बी यात्रा के बाद भी अपने घर/घोंसले का रास्ता तलाश कर लेता है। (v) मोर के

यह शोध पत्र डॉ. रघुनाथ अनन्त माशेलकर, भूतपूर्व महानिदेशक (Director General), वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद के रोजगार समाचार में प्रकाशित लेख (EN, 2002) के संक्षिप्त अनुवाद व अन्य सम्बन्धित जानकारी पर आधारित है।

सतरंगी पंख इतने आकर्षक व लुभावने हैं लगता है कि जैसे इस कृति की रचना करने में प्रकृति ने अपने अनुभव एवं पराक्रम का सम्पूर्ण खजाना लुटा दिया है। इस जादुई रंग संयोजन का राज है इसके पंखों में मौजूद सूक्ष्म (लगभग 54-80 नैनो मीटर) व आपस में गुंथी हुई त्रिविमीय फोटोनिक क्रिस्टल (Three dimensional photonic crystal) संरचनाएं होती हैं।

इन संरचनाओं के स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा गहन अध्ययन, प्राकृतिक नैनो सांचे (Natural nano tamplate) व नैनो संदीप्तिशील पदार्थ बनाने में दिशा-निर्देश प्राप्त किये गये हैं। इसी प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों पर वैज्ञानिक अनुसंधान से काफी नये पदार्थ निर्माण में सहायता मिल सकती है।

क्या अद्भुत (fantastic) तरीके है जिनसे सदियों से प्राकृतिक इंजीनियरी अपना कमाल दिखा रही है। यदि हमें वर्तमान इंजीनियरी को नव प्रवर्तनकारी (innovative) इंजीनियरी में परिवर्तित करना है तो अत्यन्त महत्वपूर्ण है जीवन (life) को निहारना। इसके विश्लेषण व संश्लेषण से जुड़े विभिन्न प्रकरण (aspects) को इंजीनियरी पाठ्यक्रम में समाहित (integrate) करना होगा। मैंने प्रयोगशाला में अनेक प्रयोगों में इस तथ्य के महत्व को प्रत्यक्ष रूप में देखा है तथा अनुभव किया है। अतः स्पष्ट है कि इंजीनियरी तंत्र (engineering system) को प्रकृति से बहुत कुछ सीखना है। इसके लिए आवश्यक है कि जैविक घटनाओं (biological phenomenon) को इंजीनियरी पाठ्यक्रम में समाहित करें। मेरा मानना है कि कुछ अद्भुत बातें वैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रेक्षण से सीखी जा सकती हैं कि प्रकृति अपनी इंजीनियरी कैसे प्रतिपादित करती है।

आभार

लेखिका इस लेख को लिखने की प्रेरणा के लिये डॉ. माशेलकर से व्यक्तिगत विचार-विमर्श के लिये हार्दिक आभार प्रकट करती हैं और बी.टेक. विद्यार्थियों को अपना स्नेह प्रेषित करती है।

आधुनिक टैक्नोसेवी संस्कृति में लोक ज्ञान-विद्या का समावेश एवं परिरक्षण*

डॉ. हर्ष सत्या
प्रो. नवज्योति सिंह

अन्तरराष्ट्रीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, हैदराबाद, (IIIT Hyderabad)

Email: harshstya@gmail.com

सारांश

आज भारत की प्राचीन विधाओं/ज्ञान व लोक विद्या का अपार भंडार विशेषकर स्वास्थ्य, पर्यावरण और विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था व प्रबंधन के क्षेत्र में, विश्व के अग्रणीय देशों के विशेषज्ञों का ध्यान आकर्षित कर रहा है। लेकिन धीरे-धीरे विलुप्त होते इस ज्ञान-विद्या को परिचालित रखने का कार्य सुचारू रूप से वांछनीय गति से नहीं हो पा रहा है। क्योंकि इस ज्ञान की विविधता, "फैला हुआ स्वभाव" (dispersed nature) एवं अथाह मात्रा में होने के कारण वास्तव में यह विशाल कार्य है, जो ग्रामीण युवकों को सामान्य तरीकों (स्मृति, लिपि, लेखन आदि) द्वारा इसमें योगदान के लिए आकर्षित या प्रोत्साहित नहीं करता है। IIIT हैदराबाद के CEH (Centre for Exact Humanities) ने इस दिशा में पहल की है। सोशियोनिटी प्रोजेक्ट(Socionity Project) इस दिशा में एक प्रयास है, जिसकी संक्षिप्त रूप रेखा इस शोध पत्र में प्रस्तुत की गई है।

शब्द : लोक विद्या, सामाजिक टेक्नोलॉजी, सोशियोनिटी प्रोजेक्ट

1. प्रस्तावना

पिछले 2 दशक में भारतीय समाज में मोबाइल फोन एवं इन्टरनेट तकनीकी का काफी प्रसार हुआ है। इस तकनीक का इस्तेमाल बड़े शहरों में सीमित न रहकर दूर-दराज स्थित गांवों में फैल गया है। चाहे वे मध्यम भारत के आदिवासी जंगल के गांव हों या फिर हिमालय के किसी कोने में बसे गांव (लद्दाख से लेकर मणिपुर तक)। इसकी पूरी सम्भावना है कि यह लहर आने वाले समय में भी जारी रहेगी। आगे जैसे-जैसे यह तकनीक और भी सस्ती होगी, वैसे-वैसे इसकी उपलब्धता और बढ़ेगी। आने वाले कुछ वर्षों में स्मार्ट फोन गाँव-गाँव में उपलब्ध हो जाएंगे । स्मार्ट फोन मोबाइल तकनीकी में सबसे बढ़िया फोन माने जाने हैं जिनका प्रयोग न केवल बातचीत एवं SMS करने के लिए बल्कि और काफी सारी गतिविधियों को जैसे फोटो, वीडियो, ऑडियो रिकॉर्डिंग, मोबाइल फोन को इन्टरनेट से जोड़कर ई-मेल और नेटवर्किंग इत्यादि कोर्यों को अंजाम देने के लिए किया जाता है। आने वाले समय में 'मोबाइल केवल एक फोन मात्र' नहीं रहेगा बल्कि एक छोटा सा कंप्यूटर होने का दावा कर सकेगा।

*(पूर्व प्रकाशित 'जिज्ञासा'-2013)

2. सोशियोनिटी प्रोजेक्ट: एक अवलोकन

स्थानीय समाज सूचना एवं ज्ञान का स्रोत बने और इस माध्यम से अनेकों स्थानीय networks का गठन हो पाए, इस प्रयास में 'socionity project की कल्पना की गयी। project का शीर्षक रखा गया- "socionity: building local information networks through crowd sourcing', जिसमें crowd sourcing यानि स्थानीय समाज को ज्ञान का स्रोत बनाने पर विशेष जोर होगा।

3. स्मृति का विमुखीकरण (Externalization of Memory)

सदियों से मानव का यह प्रयास रहा है कि स्मृति को कैसे विमुख किया जाए अर्थात मस्तिष्क से खुले पटल पर लाया जाए। लिपि और लेखन की प्रक्रिया इस सन्दर्भ में एक बड़ा कदम है। भारत में तो परंपरागत तरीके से इस दिशा में काफी प्रयास हुआ है ओरल इन्क्रप्शन पर भी-जहां स्मृति को मौखिक रूप से संजो के रखा जा सके। आज भी केरल के नम्बूदरी ब्राह्मण इस कला में महारथ हासिल रखते हैं और वैदों को मौखिक रूप से संजोये रखने की जिम्मेदारी संभाली हुई है।

आधुनिक युग में जब स्मृति का इलेक्ट्रॉनिक इन्क्रप्शन संभव हुआ तो इस प्रयास को एक नया बल मिला। इसके चलते स्मृति का न केवल लिखित रूप में बल्कि ओडियो, वीडियो और फोटो रूप में भी विमुखीकरण संभव हो पाया। बीते 2 दशकों में जैसे-जैसे तकनीकी सस्ती हुई वैसे-वैसे जनसाधारण के हाथ में आई और आज एक आम आदमी भी अपनी स्मृति का बहुरूप (text, photo, audio, video) विमुखीकरण करने में सक्षम है। इस महत्वपूर्ण वैज्ञानिक घटना ने एक तरह का सशक्तिकरण किया है जिसका संज्ञान लेना आवश्यक है।

एक आपत्ति जो उठ सकती है वो यह कि जनसाधारण के पास जो स्मृति है वह ज्ञान युक्त नहीं है। ज्ञान युक्त स्मृति केवल समाज के एक विशेष वर्ग के पास है जिन्हें विशेषज्ञ कहते हैं। यह वर्ग विश्वविद्यालयों से शिक्षा लेकर समाज में आया है। जनसाधारण विश्वविद्यालय सिस्टम से बाहर रह गया है। उसके पास न तो कोई ज्ञान है और न ही ऐसी स्मृतियां जिनके विमुखीकरण की आवश्यकता हो (आखिरकार उस स्मृति का ही विमुखीकरण होना चाहिए जिसमें कुछ ज्ञान हो, जो अन्य के काम आ सके)।

4. जनसाधारण स्मृतियां भी ज्ञान-युक्त हैं।

सोशियोनिटी प्रोजेक्ट में हम इस आपत्ति को खारिज करके चल रहे हैं। हमारा ऐसा मानना है कि विश्वविद्यालयों को ही केवल ज्ञान का केंद्र मान लेना एक बड़ी भूल है। यह एक तरह के गुलामी के फंदे (colonial hangover) से अतिरिक्त कुछ और नहीं है। ऐसी भ्रमित मानसिकता हमारी स्कूली व्यवस्था में सुचारू रूप से दी जाती है। श्री पवन गुप्ता जी (Society of Integrated Development of Himalayas मंसूरी) श्री सुनील सहस्त्रबुद्धे जी (जवीनशाला, सिरसी, कर्नाटक) जिन्होनें शिक्षा पर काफी काम किया है और स्कूली शिक्षा में एक विकल्प (alternative) तैयार करने में प्रयासरत है। इनसे बात करके यह स्पष्ट हुआ कि कैसे स्कूली व्यवस्था बच्चे के मन में अपनी लोक परम्पराओं के प्रति, अपनी लोक संस्कृति के प्रति, अपनी लोक भाषा के प्रति, अपने लोक त्यौहारों के प्रति एक हीन भाव पैदा करती है। इस हीन भाव के चलते एक बच्चे को गांव और गांव के लोग पिछड़े लगने लगते हैं और शहर अगड़ा (आधुनिक) लगने लगता है।

पिछले 150 साल की सरकारी शिक्षा व्यवस्था ने (जो पिछले 65 सालों में गांव-गांव तक पहुंची है), देश में यह माहौल बना दिया है कि जो साक्षर नहीं वो शिक्षित नहीं, जो विश्वविद्यालय में नहीं वो शिक्षित नहीं। इसलिए हिंदुस्तान के गांव के आदमी के पास ऐसी कोई स्मृति नहीं जिसका लाभ किसी अन्य को हो। यह बहस गांधी जी और नेहरू जी के जमाने से चली आ रही है।

सोशियोनिटी प्रोजेक्ट की अवधारणा के मूल में यह समझ है कि विश्वविद्यालय के बाहर भी ज्ञान का एक भंडार मौजूद है। यह भण्डार पिछले 65 सालों में काफी कुछ बचा हुआ है। ज्ञान के इस भण्डार को

आधुनिक मोबाइल तकनीकी के जरिये फिर से उभारा जा सकता है और ऐसा प्रयास टैक्नोलोजी के घरेलूकरण 'domestication of technology' का अच्छा उदाहरण होगा (न कि जो लोग छूट गए उन्हें सामान्य धारा में कैसे लायें, इसका उदाहरण)।

5. टैक्नोलोजी का घरेलूकरण (Domestication of Technology)

आधुनिक भारत में तकनीकी पर एक बड़ा आक्षेप यह लगा है कि तकनीकी ने लोगों के आहार-विहार, लोगों की जीवन शैली को उजाड़ दिया। आधुनिक तकनीकी का पारंपरिक एवं ग्रामीण जीवन शैली से बहुत मेल नहीं है। जिसके चलते अगर कोई तकनीकी को अपनाना चाहता है तो उसे अपने जीवन (आहार-विहार) में बदलाव लाने पड़ेंगे। दूसरे शब्दों में कहें तो जैसे-जैसे व्यक्ति आधुनिक तकनीकी को अपनाता जाता है वैसे-वैसे उसकी जीवन शैली बदलती जाती है। वह ग्रामीण से शहरी होता जाता है। यह बदलाव की प्रक्रिया हम आम जिन्दगी में भली भांति देख सकते हैं। ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं जो रहते गांव में हैं लेकिन उनकी जवीन शैली शहरी हो गयी हो, या जो रहते शहरों में हों लेकिन जीवन शैली पश्चिमी हो गयी हो (आहर, विहार, व्यवहार, भाषा इत्यादि)। यह एक तरह का सामाजिक सिजोफ्रेनिया(Schizophrenia) है जिसकी चपेट में 21वीं शताब्दी का भारत आ रहा है।

इस द्वन्द के चलते कुछ लोग ग्रामीण/पारंपरिक जीवनशैली को त्यागने के प्रयास में लगे रहते हैं। (इनकी काफी बड़ी संख्या है) और कुछ लोग ऐसे भी हैं जो आधुनिक तकनीक को त्यागने के प्रयास में लगे हैं (इनकी संख्या बहुत छोटी है। इनमें से काफी ऐसे हैं जो पश्चिम को भली भांति टोल कर देख चुके हैं और उसकी चमक में एक फीकापन देखते हैं)। इस द्वन्द का समाधान हमें 'Domestication of Technology' में दिखता है। यहां घरेलूकरण (domestication) शब्द का अभिप्राय है कि कैसे नयी टैक्नोलोजी का अपने जीवनशैली में सहजभाव से समावेश कर सकें, न कि जीवनशैली को टैक्नोलोजी के अनुसार ढ़ालना/बदलना पड़े। इस द्वन्द के समाधान की चिन्ता व सरोकार, एक सामाजिक वैज्ञानिक से ज्यादा एक तकनीकी विशेषज्ञ को होनी चाहिए जो इस फैलते द्वन्द के समाधान के लिए टैक्नोलोजी विकसित करके संप्रेषित कर सकता है।

6. मोबाइल तकनीकी की अनोखी विशेषता

'Domestication of Technology' की दृष्टि से देखें तो मोबाइल फोन तकनीकी की दो खास बातें हैं– 1. यह तकनीकी मौखिक है, यानि कि एक मोबाइल फोन मौखिक विषय वस्तु (oral content) को संभाल सकता है। इसके प्रयोग के लिए पढ़ा लिखा होना आवश्यक नहीं है। 2. मोबाइल बहु भाषिये है (क्योंकि यह मौखिक है)। मोबाइल के प्रयोग के लिए कोई विशेष भाषा का ज्ञान होना अनिवार्य नहीं है।

हिंदुस्तान मे जहां अधिकतर लोग पढ़े लिखे नहीं हैं (जो साक्षर नहीं वो शिक्षित न हो ऐसी जरूरी नहीं), और जहाँ समाज बहुभाषीय है, वहां मोबाइल फोन तकनीकी कि ये दो विशेषज्ञताएं, घरेलूकरण की दिशा में एक बड़ा कदम है। इन विशेषताओं के चलते ही मोबाइल फोन इतना लोकप्रिय हुआ है। कोई और तकनीकी ऐसी लोकप्रियता शायद ही हासिल कर पायी हो। मोबाइल फोन की लोकप्रियता को देखते हुए कुछ लोगों ने इसे एक क्रांति करार दिया है (telecom revolutions)। हम इसे अभी तक क्रांति तो नहीं कहेंगे, लेकिन हां अगर मोबाइल फोन को पूरी तरह domesticate कर लिया जाए-जहां यह नई तकनीकी पूरी तरह ग्रामीण शैली में बैठ जाएं, तो यह किसी क्रांति से कम नहीं होगा। हां साथ ही इसके नकारात्मक प्रभाव (impact) को नियंत्रित करने के लिए स्वः सुरक्षा गार्ड (auto safe guard) तकनीकी इसमें समाहित करनी होगी।

7. उपसंहार

उपरोक्त अवधारणा एवं पृष्ठभूमि में सोशियोनिटी प्रोजेक्ट के अन्तर्गत पहली गोष्ठी कुछ वर्ष पूर्व IIIT हैदराबाद में आयोजित की गई। इस 3 दिवसीय गोष्ठी में विशेषज्ञ (resource persons) के रूप में शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत कुछ समाजसेवी संगठन एवं मोबाइल तकनीकी पर अनुसंधान कर रहे कुछ विशेषज्ञों को आमंत्रित किया गया। इनके अलावा

चिरला, आन्ध्र प्रदेश से बुनकर समाज से 2 प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित किया गया। अन्य भागीदारी आन्ध्र प्रदेश के ग्रामीण स्कूल में कार्यरत आध्यापक एवं IIIT हैदराबाद के B.Tech./M.Tech/ ph.D. विद्यार्थियों की रही।

इस गोष्ठी में दो पायलट क्षेत्र-वेंकटरामपुरम (जिला चित्तूर, आंध्र प्रदेश) और बेलगांम (कर्नाटक) चुने गए। जहाँ यह प्रयोग शुरू किया जाएगा। इनके अलावा पुरी (उड़ीसा) के निकट ग्राम रघुराजपुर का चयन एक 'half-pilot' के रूप में हुआ जहां केवल क्राउड सोर्सिंग(crowd sourcing) का प्रयोग होगा। गोष्ठी के अंत में करीब 100 मोबाइल आधारित अनुप्रयोग (mobile based applications) जैसे स्थानीय बाजार का नक्शा और उसमें मिलने वाली वस्तुएं एवं उनके दाम, गांव का इतिहास, स्थानीय जल स्रोतों का नक्शा, मोबाइल द्वारा RTI आवदेन, ग्रामीण फोन डायरेक्टरी इत्यादि की सूची बनी। यह पूरी सूची गोष्ठी में आये ग्रामीण अध्यापक जन, समाजसेवी एवं तकनीकी विशेषज्ञों ने मिलकर बनाई। हर एक pilot area में एक खास किस्म की क्राउड सोर्सिंग (crowd sourcing) होगी और एक खास किस्म के स्थानीय जानकारी नेटवर्क (local information network) बनेंगे।

आभार

लेखकगण Sociality Project के लिये सूचना प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार से प्राप्त आर्थिक सहायता के लिये आभारी प्रकट करते हैं।

संदर्भ

1. James Surowiecki, The Wisdom of Crowds; Why the Many Are Smarter Than the Few and How Collective Wisdom Shapes Business, Economies, Societies and Nations, Lodon:Little Brown, 2004.
2. Jeff Howe, Crowd Sourcing: Why the Power of the Crowd is Driving the Future of Business, CA:Three Rivers Press, 2008.
3. Don Tapscott, Anthony D. Williams, Wikinomics: How Mass Collaboration Changes Everything, Atlantic Books, 2008.

हिन्दी कक्ष की विभिन्न गतिविधियां









हिन्दी समारोह-2023 का दृश्य







हिन्दी समारोह-2023 में संस्थान निदेशक, उप निदेशक (प्रचालन) एवं कुलसचिव का स्वागत करते हुये अध्यक्ष हिन्दी कक्ष, डॉ. नीरज चौरसिया



हिन्दी समारोह-2023 के अवसर पर संस्थान निदेशक का सम्बोधन



हिन्दी समारोह-2023 के अवसर पर उप निदेशक (प्रचालन) (कार्यकारी) का सम्बोधन



हिन्दी समारोह-2023 के अवसर अध्यक्ष हिन्दी कक्ष का सम्बोधन



कविता पाठ के दौरान चर्चा करते हुए निर्णायक मण्डल के संकाय सदस्य



हिन्दी समारोह-2023 के दौरान कविता पाठ करते हुये स्टाफ सदस्य एवं विद्यार्थीगण





हिन्दी समारोह-2023 के दौरान संकाय सदस्यों का स्वागत करते हुये निदेशक महोदय



'जिज्ञासा' – विज्ञान जर्नल के 37वें अंक का विमोचन करते हुये



हिन्दी कक्ष परिवार



हिन्दी समारोह-2023 के अवसर पर पुरस्कार प्राप्त करते हुए विद्यार्थीगण







14 सितम्बर, 2023 को 'राजभाषा हिन्दी और हमारा प्रशासनिक दायित्व' विषय पर कार्यशाला (वक्ता : श्री रामनिवास शुक्ल - पूर्व संयुक्त सचिव, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार)











21 दिसम्बर, 2023 को 'राजभाषा नीति एवं संस्थान में उसका कार्यान्वयन' विषय पर कार्यशाला
(वक्ता : श्री कुमार पाल शर्मा (उप निदेशक, कार्यान्वयन-राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार)








29 मई, 2024 को 'राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग के लिए "कंठस्थ (मेमोरी आधारित अनुवाद सॉफ्टवेयर) तथा हिन्दी ई-टूल्स की भूमिका' विषय पर कार्यशाला (वक्ता : श्री केवल कृष्ण, वरिष्ठ तकनीकी निदेशक (सेवानिवृत्त), राष्ट्रीय सूचना केंद्र (NIC), नई दिल्ली







22 अगस्त, 2024 को 'संस्थान में राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग के लिए 'राजभाषा नीति व उसका कार्यान्वयन' विषय पर कार्यशाला (वक्ता : श्री कुमार पाल शर्मा (उप निदेशक, कार्यान्वयन-राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय), भारत सरकार)



01 मार्च, 2024 को श्री कुमार पाल शर्मा, उप निदेशक, कार्यान्वयन-राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा संस्थान का राजभाषायी निरीक्षण ।



04 अप्रैल, 2024 को श्री जगदीश राम पौरी, निदेशक, राजभाषा विभाग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार व अन्य सदस्यों द्वारा संस्थान का राजभाषायी निरीक्षण ।

ग्रामीण प्रौद्योगिकी-सर्वेक्षण प्रतिवेदन (1989)

"सम्पूर्ण अध्ययन ने हमें प्रेरणा दी है। जीवन में जो भी आवश्यकताओं का जाल बुना हुआ है, उसमें प्रयुक्त तकनीकी का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत की सभ्यता पुरानी होने के कारण यहाँ एक समस्या एवं एक आवश्यकता के लिए एक से अधिक समाधान देखने को मिले। भारत की ग्राम आधारित व्यवस्था विकेन्द्रीकरण का एक अत्यन्त उज्ज्वल उदाहरण है। जीवन शैली में प्रयुक्त तकनीकी का धीरे-धीरे सरल तथा सहज होना तथा स्थानीय संसाधनों पर उनका आधारित होना व समाज का उसके ऊपर नियंत्रण होना कुछ ऐसे गुण हैं जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलते।"

डॉ. भारतेन्दु प्रकाश
विज्ञान शिक्षा केंद्र, बांदा (उ.प्र)

डिज़ाइन एवं मुद्रण: एक्सेल प्रिंटिंग यूनिवर्स, नई दिल्ली- 110067, ई-मेल: printing@groupexcelindia.com | सम्पर्क: 9899127755



प्रकाशक

हिन्दी कक्ष, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

भारत सरकार की राजभाषा नीति के प्रावधानों के अनुपालन में दिसम्बर 1981 में संस्थान में हिन्दी कक्ष की स्थापना हुई थी। संस्थान के वरिष्ठ संकाय/अधिकारी जिनकी हिन्दी के प्रति गहन रुचि होती है, हिन्दी कक्ष के अध्यक्ष होते हैं। वे हिन्दी कक्ष की गतिविधियों का निर्देशन और नीतिगत मामलों के समन्वयन के लिए उत्तरदायी होते हैं। संस्थान में निरन्तर राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन को प्रोत्साहित किया जा रहा है । राजभाषा अधिनियम 1963 तथा केन्द्र सरकार द्वारा राजभाषा नियम, 1976 बनाए गए। राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय हिन्दी के प्रगामी प्रयोग हेतु वार्षिक कार्यक्रम जारी करता है। इन सभी के अन्तर्गत द्विभाषिकता की व्यवस्था है। इन संवैधानिक उपबंधों का पालन करना संघ सरकार के प्रत्येक मंत्रालय/विभाग/स्वायत्त संगठन के लिए अनिवार्य है। अतः भारतीय प्रौधौगिकी संस्थान दिल्ली भी उपर्युक्त उपबंधों का पालन करने के लिए प्रतिबद्ध है।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

www.iitd.ac.in